ओ३म् खम्ब्रह्म

पद्म पुराण

का

आलोचनात्मक अध्ययन

लेखक

वैदिक गवेषक डॉ. शिवपूजनसिंह कुशवाह

शास्त्री (वाराणसी स. सं. वि.), एम. ए. (आगरा वि. वि.)

साहित्यालंकार (देवघर), आचार्य (बम्बई),

विशारद (प्रयाग, हि. सा. स.) सिद्धान्त वाचस्पति.

विद्यावाचस्पति, (दयानन्द स्वर्ण पुरस्कार विजेता),

सम्पादक

प्रा. धर्मवीर एम. ए.

आदरी सम्पादक 'परोपकारी'

वेद व सृष्टि संवत् १,९७,२९,४९०९०

दयानन्दाब्द १६५

विक्रम संवत् २०४७

सन् १९९० ई.

प्रकाशक

श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

वेद मंदिर (अशोक चित्रपट के सामने)

ज्वालापुर २४९४०७

जनपद : हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)

प्रथम संस्करण

मूल्य : १५ रुपये

पद्म पुराण का आलोचनात्मक अध्ययन

लेखक : डॉ. शिवपूजनसिंह कुशवाह शास्त्री

सम्पादक : प्रा. धर्मवीर एम. ए.

मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

प्रथम संस्करण : २०४७ वि.

मुद्रक : सतीशचन्द्र शुक्ल, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

प्रकाशक : श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध-संस्थान, ज्वालापुर

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

ओ३म्

पद्मपुराण-दिग्दर्शन

इसके प्रकरणों का विभाग 'खण्ड' नाम से है। यह समस्त पुराण बड़े-बड़े पांच खण्डों में विभक्त हैं। उन पांच खण्डों के नाम हैं—(१) सृष्टि-खण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड और (५) उत्तर-खण्ड ।

'सृष्टिखण्ड' में सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पांच विषयों का समावेश है। उन पांच खण्डों के नाम हैं—(१) सृष्टि-खण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड और (५) उत्तर-खण्ड ।

(१) सृष्टिखण्ड—इसमें ८२ अध्याय हैं। इसमें सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पांच विषयों का समावेश है। इससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि इन पांचों का केवल 'सृष्टि' शब्द से भी कथन किया जा सकता है। पुराण-विद्या मुख्यतः सृष्टि विद्या ही है। प्रथम देव-दानवों की उत्पत्ति 'दानवों' में हिरण्यकशिपु और बाण का उपाख्यान, तत्पश्चात् पृथु-चरित, सूर्यवंश, चन्द्रवंश आदि के वर्णन आते हैं। इन्हीं के मध्य प्रसंगागत आख्यानों तथा उपाख्यानों का समावेश है। इस खण्ड में भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण के चरित्र का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। सोमवंश-वर्णन के प्रकाश में 'इळा' से 'बुध' तक की उत्पत्ति की जिस कथा का हमने वर्णन प्रस्तुत किया है, वह यहाँ उपलब्ध है। ब्रह्मा के द्वारा पुष्कर-तीर्थ के निर्णय का प्रसंग भी इस खण्ड में आया है। गायत्री और सावित्री का उपाख्यान भी यहाँ प्राप्त है। इन विषयों के साथ प्रसंगागत रूप में अनेक तीर्थों का वर्णन, अनेक व्रत-माहात्म्य आदि भी इस खण्ड में वर्णित हैं। कुछ विशिष्ट चरित्र भी इस खण्ड में आए हैं जिनमें प्रभंजन राजा का उपाख्यान, धर्ममूर्ति राजा का वर्णन, श्वेत नामक राजा का चरित्र,

तारकासुर की कथा, कार्तिकेय की उत्पत्ति, उनके द्वारा तारक-वध आदि भी इस खण्ड में वर्णित हैं।

(२) भूमिखण्ड में अनेक आख्यान हैं। उनमें शिव शर्मा के पुत्र विष्णु शर्मा, सुव्रत, वृत्रासुर, पृथु, सुनीथा, वैण, उग्रसेन, सुकला, सुकर्मा, नहुष, ययाति, दिव्यादेवी, अशोक सुन्दरी आदि के आख्यान मुख्य हैं। जैनधर्म का भी उल्लेख यहाँ प्राप्त होता है।

कश्यप की अपनी भार्या दिति और दनु से संवाद, कश्यप और हिरण्यकशिपु-संवाद, ययाति और मातलि का संवाद आदि अनेक सारगर्भित विवरण इस खण्ड में उपलब्ध हैं। ब्रह्मचर्य, दान आदि मानवधर्म के भी अनेक विषय इसमें समाविष्ट हैं।

(३) तृतीय खण्ड का नाम 'स्वर्गखण्ड' है। इसमें ऊपर के लोकों का वर्णन तथा उनके प्रसंग से कुछ चरित्रों का वर्णन मिलता है। स्वर्गखण्ड के प्रारम्भ में शकुन्तला और दुष्यन्त का चरित्र विस्तार से वर्णित है और उन मुख्य घटनाओं का भी यहाँ विवरण है जिनके आधार पर 'कालिदास' के 'अभिज्ञान शाकुन्तल-नाटक' की रचना हुई है। इस कथानक में स्वर्ग का प्रसंग आ जाता है। मेनका अपनी पुत्री शकुन्तला को अपने लोक स्वर्ग में ले जाती है। इसके अनन्तर चन्द्र और सूर्य का कितना परिमाण है और आकाश में वे एक दूसरे से कितनी दूरी पर अवस्थित हैं, यह बतलाया गया है। नक्षत्रों और ताराओं का वर्णन करते हुए ध्रुवलोक के वर्णन में ध्रुवचरित्र भी आ गया है। राजा शिवि और राजा उशीनर का चरित्र मरुत का चरित्र, राजा दिवोदास का चरित्र, हरिश्चन्द्र का चरित्र, मान्धाता-चरित्र आदि विशिष्ट चरित्रों का भी यहाँ उल्लेख है। चातुर्वर्ण्य तथा राजधर्म का भी प्रसंगागत वर्णन है।

(४) पातालखण्ड इसका चतुर्थ भाग है। इस खण्ड में भगवान् राम का सम्पूर्ण विशद् चरित्र वर्णित है। रामकथा रावण-विजय के पश्चात्

आरम्भ होती है। राम के वंश-चरित्र के मध्य में अनेक कथोपकथाएं हैं, जिनमें अगस्ति, रावण-जन्म, च्यवन, शर्याति, नीलगिरि, पर्वत, सुबाहू, विद्युन्माली, देवपुरराज, वीरमणि, सुरथ, वाल्मीकि-समागम आदि मुख्य हैं। इसी खण्ड में कृष्ण की महिमा, कृष्णतीर्थ, नारद के स्त्रीरूप आदि के उपाख्यान हैं। अन्त में वर्ष के बारह मासों के पर्वों तथा उनके माहात्म्यों का भी वर्णन है। ये सभी उपाख्यान राम के अश्वमेध यज्ञ के लिए दिग्विजय-प्रसंग में छोड़े गए अश्व को अच्छी सामग्री उपलब्ध है।

(५) पद्मपुराण के पांचवें खण्ड का नाम 'उत्तरखण्ड' है। यह खण्ड महेश-नारद संवाद से आरम्भ होता है। सर्वप्रथम जलन्धर नामक दैत्य का चरित्र विशदरूप से वर्णित है। जलन्धर ने जब इन्द्रादि देवताओं को पराजित कर दिया, तब पार्वती को प्राप्त करने के लिए उसने भगवान् शंकर को भी युद्ध के लिए ललकारा। घनघोर युद्ध के पश्चात् विष्णु के साहाय्य से शिव ने उसे मारा। इसी में तुलसी की उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्य का भी वर्णन है। इस खण्ड में ऋतुओं और महीनों के माहात्म्य अनेकविध रूप में बड़ी विशदता से गाए गए हैं। भारत के अनेक तीर्थों की सूची तथा उनकी महिमा भी इसी खण्ड में प्रस्तुत की गई है। फिर, देवों के भी माहात्म्य वर्णित हैं। अन्त में, गंगा का माहात्म्य वर्णित है, जिसमें हरद्वार से आरम्भ करके गंगासागर पर्यन्त तीर्थों के व्याज में गंगा का सर्वेक्षण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। एकादशी व्रत और तुलसी के माहात्म्य से इस पुराण की समाप्ति होती है।''[१]

''पद्मपुराण'' सारा ही विवादग्रस्त है। इसके लिए कितने ही संस्करण मिलते हैं। जिनमें से मुख्य दो हैं, प्रथम पांच खण्ड वाला, दूसरा

---

१. महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत ''पुराण-परिशीलन'' पृष्ठ ४१५ से ४१७ तक [सन् १९७० ई., प्रथम संस्करण, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, सैदपुर पथ, पटना-४ द्वारा प्रकाशित]

छह खण्ड वाला। इन दोनों में खण्डानुक्रम का भी भेद है। अध्यायों में तथा प्रतिपाद्य विषयसूची तक में भेद है।

आनन्दाश्रम पूना में मुद्रित के छह खण्ड इस क्रम से हैं—(१) आदिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) ब्रह्मखण्ड, (४) पातालखण्ड, (५) सृष्टिखण्ड, (६) उत्तरखण्ड।

श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई में मुद्रित के अनुसार पांच खण्ड ही हैं—(१) सृष्टिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड, (५) उत्तरखण्ड।

दाक्षिणात्य में प्रचारित पद्म पुराणीय उत्तरखण्ड (१) में—"(१) सृष्टिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) पातालखण्ड, (४) पुष्करखण्ड, (५) उत्तरखण्ड।"

नारदपुराण में—"(१) सृष्टिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड, (५) उत्तरखण्ड।"

अब विज्ञ पाठक स्वयं निर्णय करें कि कौन-सा क्रम उपादेय और कौन-सा क्रम हेय है। किस क्रम को सच्चे वेदव्यासजी प्रणीत माना जाय और किस क्रम को मिथ्यावादी व्यास का कहा जाय?

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र "अष्टादश पुराणदर्पण" पृष्ठ ९७ में "पद्मपुराण सृष्टि खण्ड" १।५४।६० का उद्धरण देकर पृष्ठ ९८ में अपनी टिप्पणी लिखते हैं—"सृष्टिखण्ड में ऐसे पञ्चपर्वात्मक पद्मपुराण का उल्लेख होने भी पर भी अब हम पद्मपुराण का कोई पर्व नहीं देखते। सृष्टि में ऐसा वर्णित होने पर भी उत्तरखण्ड में अन्य प्रकार के खण्ड विभाग का परिचय पाया जाता है।"

मिश्रजी का तात्पर्य है कि अब पुराना पद्मपुराण नहीं मिलता है। यहाँ तक पद्मपुराण की अपनी साक्षी के आधार से वर्तमान पद्मपुराण की प्रामाणिकता संशयगर्त्त में गिर गई।

दाक्षिणात्य देश में प्रचलित पद्मपुराण का एक प्रमाण मिश्रजी ने दिया है। उसमें पद्मपुराण के चतुर्थ खण्ड का नाम "पुष्करखण्ड" है किन्तु प्रचलित पद्मपुराण की दशा ही कुछ विचित्र है।

इस पर मिश्रजी पृष्ठ ९८ में लिखते हैं—

"ऊपर जो पञ्चम खण्ड का उल्लेख किया गया है प्रचलित पद्मपुराण में पुष्करखण्ड का सम्पूर्ण अभाव है। प्रचलित पद्मपुराण के अध्यायों में पुष्कर माहात्म्य वर्णित हुआ है।"

मिश्रजी के लिखने का तात्पर्य है कि "पद्मपुराण" में पुष्कर माहात्म्य सूचक पुष्करखण्ड नाम का कोई खण्ड नहीं है।

यहाँ पद्मपुराण स्वयं अपने विरुद्ध प्रमाण दे रहा है। गौड़ीय पद्मपुराण का प्रमाण देकर मिश्रजी पृष्ठ ९९ पर लिखते हैं—

"वास्तव में गौड़ीय पद्मोत्तर खण्ड में जैसे खण्ड विभाग वर्णित हुए हैं, नारदपुराण में भी ठीक ऐसे पञ्च खण्डात्मक पद्मपुराण का विषयानुक्रम दिया गया है।"

अर्थात् दाक्षिणात्य पद्मपुराण के साथ इसका मेल नहीं है। मिश्रजी 'नारदपुराण' से पद्मपुराण की विषय सूची पृष्ठ ९९ से १०३ तक उद्धृत करके पृष्ठ १०४ में लिखते हैं कि—

'ऊपर जितने प्रमाण उद्धृत हुए हैं, प्रचलित पद्मपुराण के साथ मिलाकर देखने से हम ऐसा जान सकते हैं कि, आदि पद्मपुराण के लक्षण और विषयादि का प्रचलित पद्मपुराण में सम्पूर्ण अभाव नहीं है। मत्स्य और नारदपुराण में जैसे लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं वे सब ही प्रचलित पद्मपुराण में पाए जाते हैं। किन्तु पहले पद्मपुराण का जैसा खण्डविभाग था उसका सम्पूर्ण परिवर्तन हुआ है।' पद्मपुराण अपनी मूल अवस्था में नहीं रहा। इस बात को मिश्रजी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हुए पृष्ठ १०४ में लिखते हैं—

'प्रचलित पद्‌मपुराण देखते ही हम पद्मपुराण के तीन संस्करण का परिचय पाते हैं। प्रथम संस्करण में पुष्करादि करके पाँच वेदों में पद्म-पुराण विभक्त था पांच खण्ड में विभक्त नहीं था। सृष्टि खण्ड से हम इस पञ्चपर्वात्मक पाद्म का सन्धान पाते हैं। विष्णुपुराण में तत्पूर्ववर्ती पद्म-पुराण का जो उल्लेख है संभवतः वही पञ्चपर्वात्मक था। प्रथम संस्करण में पौष्कर प्रथम पर्व गिना जाने पर भी दूसरे संस्करण में पौष्कर दूसरे खण्ड में बदल गया और सृष्टि खण्ड में प्रथम पर्व का स्थान अधिकार किया। दाक्षिणात्य में प्रचलित पद्मोत्तर खण्ड से उनका प्रमाण पाया जाता है। तीसरे संस्करण में पौष्कर खण्ड का लोप हुआ संभवतः सृष्टिखण्ड के पुष्कर माहात्म्य के अन्तर्गत हुआ, स्वर्ग खण्ड ने उसका स्थान अधिकार किया गौड़ीय पद्मपुराण और नारदपुराण से इस तीसरे संस्करण के लक्षणादि पाये किन्तु इसके पीछे भी चौथा संस्करण हुआ। दाक्षिात्य लोगों ने स्वर्ग-खण्ड ग्रहण नहीं किया, उन्होंने स्वर्गखण्ड के स्थान में ब्रह्मखण्ड ग्रहण किया और यथाक्रम से आदि खण्ड, भूमिखण्ड, ब्रह्मखण्ड, पातालखण्ड, सृष्टिखण्ड और उत्तरखण्ड इन छः खण्डों में पद्मपुराण विभक्त कर लिया।'

मिश्रजी स्पष्ट शब्दों में अदला-बदली, हेरफेर, प्रक्षेप-विक्षेप स्वीकार कर रहे हैं।

इतना ही नहीं इसी पृष्ठ १०४ की पाद-टिप्पणी में मिश्रजी लिखते हैं—

'पूना के आनन्द आश्रम से जो पद्मपुराण प्रकाशित हुआ है, इसके आदि खण्ड और ब्रह्मखण्ड को गौड़ीय पौराणिक लोग कोई भी 'पाद्म' कह कर स्वीकार नहीं करता। इस देश की बहुत सृष्टि खण्ड की पोथी आदि वा ब्रह्म कहकर उक्त हुई है।....'

मिश्रजी के लिखने से स्पष्ट प्रकट हो गया कि गौड़ीय पौराणिक, उत्तर भारत या बंगाल के पौराणिक तो सिरे से आदि खण्ड और ब्रह्म

खण्ड को पुराण ही नहीं मानते । मिश्रजी को भी दोनों दूसरे ही अन्य ग्रन्थ ज्ञात होते हैं । उधर दक्षिणी लोगों को अपना मुद्रित पुराण, पुराण लगता है, गौड़ीय लोगों के पुराण को वे पुराण मानने को उद्यत ही नहीं ।

पौराणिक पं. कालूराम शास्त्री भी पद्मपुराण में क्षेपक मानते हैं । वे लिखते हैं—'इस पद्म की श्लोक संख्या ५५ हजार है इसमें हिरण्यमय पद्म में जगदुत्पत्ति वर्णित है इस कारण इस पुराण को पण्डित लोग 'पाद्म कहते हैं ।

उपलब्ध पद्मपुराण में श्लोक संख्या पचपन सहस्र से कुछ अधिक बैठती है अतः कुछ क्षेपक है ।'[२]

पं ज्वालाप्रसाद मिश्र पुनः लिखते हैं—'पद्मपुराण के कई संस्कार हुए हैं । एक प्रथम संस्कार वेद व्यासजी का दूसरा संस्कार बौद्धधर्म के ह्रास और सनातन धर्म के पुनः अभ्युदय समय में हुआ और एक संस्करण नारदपुराण के अनुसार रहा इस प्रकार यह संस्कार हुए । यह संस्करण युग भेद के कारण से रहे परन्तु पश्चात् ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में जब कि श्री स्वामी रामानुजाचार्य और माधवाचार्य का मत इस देश में अधिक प्रचलित हुआ तब सम्प्रदाय के कारण इसमें बहुत-सी प्रक्षिप्त श्लोकावाली मिलाई गई वही मानो एक प्रकार का चतुर्थ संस्कार है । उदाहरण के लिए पाखण्डियों के लक्षण, मायावाद निन्दा, तामसपुराण वर्णना, ऊर्ध्व पुण्ड्र आदि वैष्णवचिह्न धारण की कथा भी द्वैतवाद की सुख्याति इत्यादि तृतीय संस्करण में नहीं थी किन्तु इस चौथे संस्करण के समय यह सब आधुनिक कथा प्रविष्ट हुई ।'[३]

---

२. "पुराणवर्म", पूर्वार्द्ध, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १२६
३. 'अष्टादश पुराणदर्पण' पृष्ठ १०५ [संवत् १९९३ वि. श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई]

मिश्रजी को उचित था कि अपने कथन की पुष्टि में हेतु देते कि यह सब तीसरे संस्करण में न था।

आपके कथनानुसार वर्तमान पद्मपुराण अपने शुद्ध रूप में नहीं मिलता है। चौथे संस्करण को मिश्रजी क्यों दूषित समझते हैं। इस पर वे लिखते हैं—

'इस चौथे संस्करण से उत्तरखण्ड में (२६३-६६-८९) लिखा है—रुद्र बोले, हे देवि ! तामसशास्त्र की कथा सुनो, इस शास्त्र के श्रवणमात्र से ही ज्ञानियों को पातित्य उत्पन्न होता है। मैंने पहिले पहिले शैव पाशुपतादिशास्त्र कहे थे, तदन्तर मेरी शक्ति में आसक्त ब्राह्मणों ने जो तामसशास्त्र कहे थे उनको सुनो। कणाद, वैशेषिकशास्त्र, गौतम, न्याय, कपिल, सांख्य, धिषण अतिगर्हित चार्वाक मत और दैत्यों के निधनार्थ बुद्धरूपी विष्णु ने नग्ननीलाम्बरों के असत् शास्त्र कहे थे। मायावाद रूप असत् शास्त्र प्रच्छन्न बौद्ध गिने जाते हैं। कलिकाल में ब्राह्मणरूप में मैंने ही यह मायावाद का प्रचार किया है। इसमें लोक निन्दित श्रुति समूह का कदर्थ कर्म रूप परित्याग, सर्वकर्म परिभ्रष्ट विधर्म्मियों की कथा, परमात्मा के साथ जीव का ऐक्य, ब्रह्म का निर्गुणरूप इत्यादि प्रतिपादित हुआ है। कलिकाल में मनुष्यों के मुग्ध करने के निमित्त ही जगत् में इन सब शास्त्रों का प्रचार हुआ है। मैं जगत् के नाश के निमित्त यह सब अवैदिक महाशास्त्र वेदार्थवत् रक्षा करता हूँ। पूर्वकाल में जैमिनी ब्राह्मण ने भी निरीश्वरवाद प्रचार करने के निमित्त वेद की कदर्थ पूर्वमीमांसा रची थी, मैं तामस पुराणों को कहता हूँ, प्रमाण—

शृणु देवी प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् ।
तेषां स्मरणमात्रेण मोहः स्याज्ज्ञानिनामपि ॥

प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् ।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि च ततः शृणू ॥

कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिक महत् ।
गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन वै ॥

धिष्णेन च तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् ।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ॥

बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्नीलपटादिकम् ।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध उच्यते ॥

मयैव कथितं देवि कलौ ब्रह्मणरूपिणा ।
अपार्थंश्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम् ॥

स्वकर्मरूपं त्याज्यस्वमत्रैव प्रतिपाद्यते ।
सवकर्मपरिभ्रष्टैर्वैधर्मत्वं तदुच्यते ॥

परेश जीवयोरैक्यं मया तु प्रतिपाद्यते ।
ब्रह्मणोस्य स्वयं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ॥

सर्वस्य जगतोप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे ।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायया यदवैदिकम् ॥

मयैव कल्पितं देवि जगतां नाशकारणात् ।
मदाज्ञया जैमिनिना पूर्वे वेदमपार्थकम् ॥

निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रमहत्तरम् ।
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोध मे ॥

प्र० २३५।२-१३॥

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ॥१८॥

गौतमं बार्हस्पत्यं च साम्बतं च यम स्मृतम् ।
सांख्यं चोशनसं चेति तामसा निरयप्रदाः ॥२१॥

इसी प्रकार मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द पुराण को तामसी कहा है, तथा गौतम बृहस्पति, सम्वर्त, यम, सांख्य और उशनास्मृति को तामस और नरक देने वाली कहा है इसी प्रकार २३५ अध्याय मुद्रित पद्म-पुराण के ५ श्लोक में 'शंख चक्रोर्ध्वपुंड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः। रहिता ये द्विजा देवि ते वै पाखंडिनः स्मृताः'। जो शंख चक्र से रहित ब्राह्मण को पाखण्डी कहा है तथा भस्मधारी को पाखंडी कहा है मेरी समझ में जहां कहीं पुराणों में इस प्रकार के सम्प्रदाय द्वेष सूचक श्लोक पाये जायं वे निश्चय ही आधुनिक और प्रक्षिप्त हैं इसमें कोई सन्देह नहीं और बुद्धिमान् उनको व्यासजी के निर्मित श्लोक नहीं मानते यही श्लोक इस बात की साक्षी देते हैं कि एक समय सम्प्रदाय द्वेष भी इतना बढ़ गया था कि पुराणों में प्रक्षिप्त श्लोक मिलाकर महानुभावों ने अपने चित्त का गुबार मिटाया।'[४]

मिश्रजी के लेख से इस लम्बे उद्धरण देने के दो प्रयोजन हैं। एक तो पाठकों को स्वयं पुराणों की पुराणों के विषय में सम्मति ज्ञात हो जाय, और दूसरा मिश्रजी की प्रक्षिप्त जांचने की कसौटी का भी ज्ञान हो जाय। मिश्रजी ने जो कसौटी बतलाई है, उससे तो कोई भी पुराण प्रामाणिक नहीं ठहरेंगे क्योंकि वैष्णव पुराणों में विष्णु के अतिरिक्त अन्य सबकी अधीनता, शैव पुराणों में शिव से भिन्न सभी देवताओं की हीनता, देवी सम्बन्धी पुराणों में देवी को ही सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं। मिश्रजी को यदि वैष्णवगण यही कहें कि 'शिवोत्कर्ष सूचक उनके तिलक, छाप के निन्दित वाक्य पुराणों में आधुनिक और प्रक्षिप्त हैं, इसमें सन्देह नहीं और यह कि बुद्धिमान् लोग इनको व्यासजी के निर्मित श्लोक नहीं मानते। यही श्लोक इस बात की साक्षी देते हैं कि एक समय सम्प्रदाय द्वेष भी इतना बढ़ गया था कि पुराणों में प्रक्षिप्त श्लोक मिला कर इन महानुभावों ने अपने चित्त का गुबार मिटाया।'

---

४. वही, पृष्ठ १०५ से १०८ तक

इसका मिश्रजी तथा श्रीमाधवाचार्य व श्री दीनानाथ के पास क्या समाधान है? इससे तो पुराण सारे ही आधुनिक जैसे दुग्ध और पानी का मिश्रण कर दिया जाय, तो वह शुद्ध दुग्ध नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार पुराण में अपुराण (मिश्रजी के कथनानुसार वैष्णवों के मिश्रण किए हुए श्लोक पुराण नहीं) मिलकर पुराण तो हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार जल मिश्रित दुग्धपान करने से नाना प्रकार के रोगों की सम्भावना रहती है, इसी प्रकार इस मिश्रित पुराणाभास के कारण आर्य जाति में विद्वेष, साम्प्रदायिक कलह प्रभृति नाना रोगों की उत्पत्ति एवं वृद्धि हो रही है, बुद्धिमानों को इनका त्याग करके वेदों की शरण में जाना चाहिए।

पुनः मिश्रजी लिखते हैं—"लिखित पद्म पुराण के उत्तरखण्ड में २८२ अध्याय हैं और श्री वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय के मुद्रित पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में २५५ अध्याय हैं।"[५]

केवल २७ अध्याय का भेद है, कुछ अधिक नहीं, क्योंकि २८२-२५५=२७ है।

किन्तु मिश्रजी इसका समाधान करते करते गड़बड़ का एक और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—"कहीं कहीं दो दो अध्यायों का एक एक अध्याय हो गया है कथा भाग में कोई भेद नहीं है और उसमें यह उत्तरखण्ड छठा है इस कारण थोड़ा-सा विवरण यहाँ लिखते हैं।

प्रथम सृष्टि खण्ड इसमें सूची के अनुसार ८२ अध्याय हैं। दूसरा भूमिखण्ड इसमें सूची के अनुसार १२५ अध्याय हैं। तीसरा स्वर्गखण्ड यह पीछे लिखी सूची के अनुसार नहीं है इस कारण इसके अध्याय क्रम लिखते हैं।"[६]

अतः मिश्रजी के "पद्मपुराण" में तथा श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई में मुद्रित "पद्मपुराण" में महदन्तर है और मिश्रजी का और श्रीवेङ्कटेश्वर

---

५. वही, पृष्ठ १०८

६. वही, पृष्ठ १०८-१०९

यन्त्रालय, बम्बई का पुराण, पूना के आनन्दाश्रम से मुद्रित पुराण से सर्वथा भिन्न है।

२. 'पद्मपुराण' की श्लोक संख्या व काल

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यावारिधि[७], पं० श्री कृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य[८], पं० जयदेव शर्मा+श्री रमेशचन्द्र दत्त[९] इसकी श्लोक संख्या ५५००० मानते हैं, जबकि पं० बलदेव उपाध्याय साहित्याचार्य[१०], केवल ५०,००० मानते हैं। इस प्रकार आपस में मतभेद है।

काल—पं० बलदेव उपाध्याय साहित्याचार्य का मत है—

.......इस प्रकार कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' पर आश्रित होने से स्वर्गखण्ड का तथा सम्पूर्ण पद्मपुराण की रचना का काल पञ्चम शती से अर्वाचीन ही मानना उचित है। यह प्रचलित पद्मपुराण का निर्माणकाल है।

.... वंगीय कोशवाला उत्तरखण्ड तो मुद्रित उत्तरखण्ड से भी अवान्तरकालीन है। यह श्री मद्भागवत का तथा राधा का ही उल्लेख नहीं करता, प्रत्युत रामानुज मत का भी उल्लेख करता है। अतः यह श्री

---

७. वही, पृष्ठ ९६

८. पुराण तत्त्वमीमांसा पृष्ठ ११८ (सन् १९६१ ई. हिन्दी प्रचारक मण्डल, लखनऊ द्वारा प्रकाशित)
'अष्टादश पुराण परिचयः' पृष्ठ ९५ (संवत् २०१३ वि., भारतीय साहित्य विद्यालय १४/२९ टेढ़ीनीम, वाराणसी)

९. 'प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास' पृष्ठ ५२६ (सन् १९६६ ई. द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद)

\+ 'पुराण-मत-पर्यालोचन' पृष्ठ २७८ (सन् १९१९ ई. गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित)

१०. 'पुराण-विमर्श' पृष्ठ १४१ (सन् १९६५ ई. चौखम्बा, वाराणसी)

रामानुज से प्राचीन नहीं हो सकता। इस खण्ड में द्रविड़ देश के एक वैष्णव व राजा की कथा दी गई है जिसने पाखण्डियों अर्थात् वेदों के मिथ्या उपदेशों के प्रभाव में आकर अपने राज्य से विष्णु मूर्तियों को फेंक दिया, वैष्णव मन्दिरों को बन्द कर दिया और प्रजा को शैव होने के लिए बाध्य किया। श्री अशोक चटर्जी का कथन है कि यह कुलोत्तुङ्ग द्वितीय का संकेत करता है जो शैवों के प्रभाव से उग्र शैव बन गया था। उसे राज्य सिंहासन पाने का समय ११३३ ईस्वी है जिससे इस खण्ड को उत्तरकालीन होना चाहिए। हित हरिवंश के द्वारा १५८५ ई० में प्रतिष्ठित राधावल्लभी सम्प्रदाय में राधा का ही प्रामुख्य है जिसका प्रभाव उक्त लेखक इस खण्ड पर मानते हैं। फलतः उनकी दृष्टि में यह उत्तरखण्ड १६ वीं शती के पश्चात् की रचना है'[११]

डा० विलसन के अनुसार इस पुराण का उत्तरखण्ड पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी में लिखा गया है।'[१२]

३. आलोच्य संस्करण

मेरे सामने श्री मनमुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता १ द्वारा प्रकाशित 'पद्मपुराणम्' मूलमात्र, ५ खण्डों में है। प्रथम भाग द्वितीय भाग सन् १९५७ ई. तृतीय, चतुर्थ भाग, सन् १९५८ ई. में, और पञ्चमभाग, सन् १९५९ ई. में प्रकाशित है।

इस आलोचना में सभी श्लोक इसी संस्करण के हैं। यदि दूसरे किसी संस्करण से श्लोक लिए जायेंगे तो उनका उल्लेख कर दिया जायेगा। मासिक पत्र 'कल्याण' गोरखपुर वर्ष १९, अक्टूबर १९४४ ई., संख्या १ का 'संक्षिप्त पद्म पुराणाङ्क 'केवल अनुवाद मात्र. सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड व स्वर्ग खण्ड का कतिपय अंश से भी सहायता ली गई है।

---

११. वही, पृष्ठ ५४१

१२. 'प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास' पृष्ठ ५२८

'पद्मपुराण' पर आलोचनात्मक पुस्तक कोई उपलब्ध नहीं है।

४. भ्रान्तिखण्ड—

(१) दिति के गर्भ में इन्द्र का प्रवेश और सप्त मरुतों की उत्पत्ति—

ततो वर्षं शतांतेसान्यूनेतुदिवसैस्त्रिभिः ॥५४॥
मेनेकृतार्थ मात्यामनं प्रीत्याविस्मितमान सा।
अकृत्वापादयोः शौचं शयानामुक्तमूर्धजा ॥

निद्राभर समाक्रांतादिवापर भिरा क्वचित्।
ततस्तदन्तरलब्ध्वाप्रविश्यांतः शचीपतिः ॥

वज्रेण सप्तधाचक्रेतं गर्भंत्रिदशाधिपः।
ततः सप्त च ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥५७॥

रुदंतः सप्ततेबालानिषिद्धावानवारिणा।
भूयोऽपिरुदमानांस्तानेकैकान्सप्रधाहरिः ॥५८॥

चिच्छेदवज्रहस्तोवैपुनस्तूदरसंस्थितान् ।
एवमेकोनपंचाशद् भूत्वातेरुरुदुर्भृशम् ॥५९॥

इंद्रो निवारयामास मा रुदध्वं पुनः पुनः।
ततः संचितयामासवितर्क मिति वृतहा ॥६०॥

—पद्म पूराण, १ सृष्टि खण्ड, मन्वन्तर वर्णनम्, अ. ७

अर्थ—'तदनन्तर जब सौ वर्ष की समाप्ति में तीन ही दिन बाकी रह गये, तब दिति को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने को कृतार्थ मानने लगी लथा उनका हृदय विस्मयविमुग्ध रहने लगा। उस दिन वे पैर धोना भूल गयीं और बाल खोले हुए ही सो गयीं। इतना ही नहीं, निद्रा के भार से दबी होने के कारण दिन में उनका सिर कभी नीचे की ओर हो गया। यह अवसर पाकर शचीपति इन्द्र दिति के गर्भ में प्रवेश कर गए और अपने वज्र

के द्वारा उन्होंने उस गर्भस्थ बालक के सात टुकड़े कर डाले तब वे सात टुकड़े सूर्य के समान तेजस्वी सात कुमारों के रूप में परिणत हो गये और रोने लगे। उस समय दानवशत्रु इन्द्र ने उन्हें रोने से मना किया तथा पुनः उनमें से एक-एक के सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार उनचास कुमारों के रूप में होकर वे जोर जोर से रोने लगे तब इन्द्र ने 'मारुदध्वम्' (मतरोग्रो) ऐसा कहकर उन्हें बारम्बार रोने से रोका और मन ही मन सोचा कि ये बालक धर्म और ब्राह्मजी के प्रभाव से पुनः जीवित हो गए।

समीक्षा—यह गप्प है। यह घटना अन्य कई पुराणों में भी है। पुराणकर्त्ता ने 'भंग की तरंग' में गप्प मारा है।

सौ वर्ष तक गर्भ रहना असंभव है। १० मास से अधिक गर्भ नहीं रहता है यह वैदिक सिद्धान्त है, आयुर्वेद में भी है।

इन्द्र का व्रज लेकर गर्भाशय में प्रवेश करना असंभव, सात टुकड़े करना और पुनः उनमें से सात-सात टुकड़े करना और पुनः बच्चों का जीवित रहना यह सब अवैज्ञानिक व प्रजनन विद्या के विरुद्ध है। इन्द्र को जब इतनी शक्ति थी कि गर्भाशय में प्रवेश कर गए तब क्या उनमें इतनी शक्ति भी नहीं थी कि बाहर से गर्भाशय को विनाश कर दें। उनसे तो आज कल के भिषक्, डाक्टर अच्छे हैं तो गर्भपात करा देते हैं। इस घटना को वही मान सकता है जिसकी दोनों आंखें फूट गई हों और मस्तिकविकृत हो गया हो।

२. पृथु की विचित्र उत्पत्ति

शापेनमारयित्वैनमराजकभयार्दिता ॥६॥

ममंथुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः।
तत्कायान्मथ्यमानात्तु जनिता म्लेच्छजातयः॥

शरीरेयातुरंशेन कृष्णांजनसमप्रभाः।
पितुरंभस्यसंगेन धार्मिकोधर्मकारकः ॥८॥

उत्पन्नोदक्षिणाद्धस्तात्सधनुः सशरोगदी ।
दिव्यतेजोमयः पुत्रस्सरत्नकवचागदः ॥९॥

पृथुरेवाभवन्नाम्नासच्चविष्णुरजायत ।
साविप्रैरभिषिक्तः संस्तपः कृत्वासुदुष्करम् ॥१०॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे, पृथुराज्ञकथानकम्, अध्याय ८

अर्थ—फिर अराजकता के भय से पीड़ित होकर पाप रहित ब्राह्मणों ने वेन के शरीर का बलपूर्वक मंथन किया। मंथन करने पर उसके शरीर से पहले म्लेच्छ जातियां उत्पन्न हुईं जिनका रंग काले अंजन के समान था।

तत्पश्चात् उसके दाहिने हाथ से एक दिव्य तेजोमय शरीरधारी धर्मात्मा पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ, लो धनुष, वाण और गदा धारण किए हुए थे तथा रत्नमय कवच एवं अङ्गदादि आभूषणों से विभूषित थे। वे पृथु नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके रूप में साक्षात् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे। ब्राह्मणों ने उन्हें राज्य पर अभिषिक्त किया।"

समीक्षा—मृतक शरीर के मंथन करने से म्लेच्छ जातियों का उत्पन्न तथा दाहिने हाथ से पृथु का शस्त्रास्त्र व आभूषण सहित उत्पन्न होना अलिफलैला की कथा के समान गप्प है। पुरुष व स्त्री के वीर्य व रज के संमिश्रण से ही सन्तानोत्पत्ति होती है। यहाँ पुराणकर्त्ता ने अवैज्ञानिक व सृष्टिप्रकरण विरुद्ध बातें 'भंग की तरंग' में लिखी हैं।

(३) श्री रामचन्द्रजी द्वारा शम्बूक शूद्र का वध—

"तस्यतद्भाषितं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः
अवाक्छिरास्तथा भूतो वाक्यमेतदुवाचह ।

शूद्र तापस उवाच ।

स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ चिराद् दृष्टोऽसि राघव ॥७९॥

पुत्रभूतोऽस्मि ते चाहं पितृभूतोऽसि मेऽनद्य ।

अथवा नैतदेवं हि सर्वेषां नृपतिः पिता
सत्वमर्च्योऽनिन्नोराजन्वर्ध्यते विषये तपः
चरामस्तत्र भागोऽस्ति पूर्वसृष्टः स्वयम्भुवा
न धन्याः स्मोवयं रामधन्यस्त्वमसिपार्थिव।

यस्म ते विषये ह्येवं सिद्धि मिच्छन्ति तापसाः
तपसा त्वं मदीयेन सिद्धिमाप्नुहि राघव :
यदेतद्ब्रुवता प्रोक्तं योनौ कस्यां तु ते तपः
शूद्रयोनि प्रसूतोऽहं तप उग्रं समास्थित।
देवत्वं प्रार्थये राम स्वशरीरेण सुव्रत ॥८४॥
न मिथ्याहं वदे भूपदेवलोक जिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नामनामतः।
भाषतस्तस्य काकुत्स्थ खड्गंतु रुचिरप्रभम्।
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघव :"

—[पद्म पुराण, १ सृष्टि खण्डे, शूद्र तापस वध
अध्याय ३७]

अर्थ—अनायास ही महान् कर्म करने वाले श्री रघुनाथजी के उपर्युक्त वचन सुन कर नीचे मस्तक करके लटका हुआ शूद्र उसी अवस्था में बोला—'नृपश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। रघुनन्दन ! चिरकाल के बाद मुझे आपका दर्शन हुआ है। मैं आपके पुत्र के समान हूँ, आप मेरे लिए पिता के तुल्य हैं। क्योंकि राजा तो सभी के पिता होते हैं। महाराज ! आप हमारे पूजनीय हैं। हम आपके राज्य में तपस्या करते हैं; उसमें आपका भी भाग है। विधाता ने पहले से ही ऐसी व्यवस्था कर दी है। राजन् ! आप धन्य हैं; जिनके राज्य में तपस्वी लोग इस प्रकार सिद्धि की इच्छा करते हैं। मैं शूद्रयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ और कठोर तपस्या में लगा हूँ। पृथ्वीनाथ ! मैं झूठ नहीं बोलता; क्योंकि मुझे देवलोक प्राप्त करने की इच्छा है। काकुत्स्थ ! मेरा नाम शम्बूक है।'

वह इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि श्री रघुनाथजी ने म्यान से चमचमाती हुई तलवार निकाली और उसका उज्ज्वल मस्तक धड़ से अलग कर दिया।

समीक्षा—यजु. २६।२ के अनुसार जैसे शूद्रों को वेदाधिकार है वैसे ही तप करने का भी अधिकार है। पुराणकार ने शूद्र के अधिकार को हनन करने का कुप्रयास किया है।

शम्बूक शूद्र के वध का रहस्य—

शम्बूक शूद्र की कथा "वाल्मीकीय रामायण" उत्तरकाण्ड में है। इस काण्ड को विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं।

"तेथा सर्ग शतान्पञ्च ॥" वा. वा. ३।२

अर्थात्—"५०० सर्ग बनाये। इस पर राम टीकाकार लिखता है—

"पञ्चशत रूपसर्ग संख्या षट्काण्डानमिव।'

अर्थात्—"५०० सर्ग संख्या ६ काण्डों की है, ७वें की नहीं।"[13]

पं. शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ का मत—"यह रामचन्द्र के ऊपर किसी अज्ञानी स्वार्थी धूर्त्त ने कलंक मढ़ा है। प्रथम तो उत्तरकाण्ड रामायण वाल्मीकिजी का बनाया हुआ नहीं है और जब फलश्रुति में वाल्मीकिजी स्वयं कहते हैं कि शूद्रों को भी रामायण पढ़ना चाहिए तब तपस्या का निषेध कैसे कर सकते हैं।

…………इस कारण शम्बूक की आख्यायिका सर्वथा रामायण विरुद्ध है। किसी अज्ञानी ने वाल्मीकि के नाम पर लिखकर इसमें मिलाया है।…

शबर जाति बहुत निकृष्ट और अति शूद्र वा असच्छूद्र मानी जाती है।…रामायण में देखते हैं कि यह शबरी तपस्या करते-करते सिद्धा

---

१३. देखो—"भास्कर-प्रकाश" चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ३४१

हुई।.........एक निकृष्ट जाति की स्त्री भी तपस्या कर परम सिद्धा हुई और किसी ब्राह्मण का अन्य वर्ण का बालक नहीं मरा और इसकी तपस्या से न किसी विघ्न की ही चर्चा पाई जाती फिर, उत्तरकाण्ड की बात कैसे मानी जाय। इस कारण विद्वानों की दृष्टि में शम्बूक की कथा सर्वथा गप्प है।"[१४]

पं. भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक, मेरठ—"वाल्मीकि रा. में शतशः श्लोक प्रक्षिप्त हैं जिनको राम टीकाकार और श्रीधरादि भी सर्ग के सर्ग प्रक्षिप्त लिख गए हैं। इसी तरह उक्त शम्बूक विषयक श्लोक भी प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि ईश्वर की भक्ति चाण्डाल भी कर सकता है फिर रामचन्द्र ऐसा अन्याय कभी नहीं कर सकते थे। अतः यह झूठी गप्प है।"[१५]

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम. ए.—-उत्तरकाण्ड के ७६वें अध्याय में जो दशरथ के पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शूद्र तपस्वी के शिरश्छेद की कहानी दी हुई है, वह क्या सही है ? कथा है (७३ अध्याय) कि किसी ब्राह्मण का पुत्र अकाल में ही मर गया। राजव्यवस्था की गलती ही इसका कारण समझी गई। प्रतिकार के लिए राम वाहर निकले। दण्डकारण्य में शम्बूक नामक तपस्वी को तप करते देख उसका सिर काट लिया और देवताओं ने साधुवाद और पुष्पवृष्टि की। उत्तरकाण्ड की अनेक कथाओं को पण्डित-जन प्रक्षिप्त मानते हैं।........"[१६]

---

१४. "जाति निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७४ से २७६ तक

१५. "वास्तविक वैदिक वर्ण व्यवस्था" (पूर्वार्ध) अर्थात् पं. अखिलानन्द द्वारा प्रवर्तित कल्पित 'वैदिक वर्ण व्यवस्था' की सुसमीक्षा" पृष्ठ ३६ [भास्कर प्रेस, मेरठ द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, प्रथम संस्करण, वैदिक सिद्धान्त ग्रन्थरत्नमाला—संख्या ३]

१६. "भारतवर्ष में जाति भेद" पृष्ठ ९१-९२ [सन् १९५२ ई. में साहित्य भवन लिमिटेट, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, नवीन संस्करण]

उपर्युक्त तीनों विद्वान् उत्तरकाण्ड की शम्बूक-कथा को प्रक्षिप्त मानते हैं।

पौराणिक पं. गंगाप्रसादजी शास्त्री द्वारा शम्बूक की कथा का स्पष्टीकरण--

"............यदि शूद्र को भी तप आदि करने का अधिकार है, तो भगवान् श्री रामचन्द्रजी ने तप करते हुए शम्बूक शूद्र को क्यों मारा। यह कथा वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड में इस प्रकार है।

एक वृद्ध ब्राह्मण था। उसके जीवनकाल में ही उसका चौदह वर्ष का पुत्र मर गया। वह श्री रामचन्द्रजी के पास आकर बोला—कि तुम राजा हो, और तुम्हारा कोई पाप है, जिससे मुझ प्रजा का यह पुत्र अकाल में मर गया है। श्री रामचन्द्रजी ने अन्वेषण किया तो शम्बूक शूद्र तप करता मिला। यह राजा का पाप समझा गया और जब भगवान् ने उस शूद्र का शिर काट दिया, तब उस ब्राह्मण का पुत्र भी जीवित हो गया।

(वा. रा. उ. ७०)

अब इस पर सर्वप्रथम यह विचारना है, कि तप करना शूद्र के लिए धर्म का हेतु है या अधर्म का। यदि तप करने से शूद्र को स्वर्ग प्राप्त होगा, तो इससे तुम्हारी क्या हानि है। यदि एक शूद्र एकान्त में बैठकर भगवत् प्राप्ति के लिए तप करे और राजा उस निरपराध को खड्ग से मार डाले, तो इससे अधिक पाप और क्या हो सकता है। यदि यह कहा जावे कि,— तप करने से तो शूद्र को नरक प्राप्ति ही होगी, तो ऐसा कह नहीं सकते, क्योंकि उस समय देवताओं ने कहा है—

गृहाण च वरं सौम्य ! यत्त्वमिच्छस्यरिन्दम।
स्वर्गभाङ् न हि शूद्रोऽयं, त्वत्कृते रघुनन्दन॥

हे रघुनन्दन ! आप वर मांगिये जो आपकी इच्छा हो, क्योंकि तुम्हारे ही कारण हमारे स्वर्ग में यह शूद्र नहीं आ सका है। इस कथन का भाव

स्पष्ट है कि यदि भगवान् राम उस शूद्र को नहीं मारते तो वह अवश्य स्वर्ग जाता। तो क्या ? स्वर्ग में शूद्र को देवता आने देना चाहते ही नहीं हैं। 'आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते' अर्थात् अपने धर्म में स्थित हुआ शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त कर सकता है, तो क्या देवता शूद्र को अपने कर्म में भी सावधान रहने देना नहीं चाहेंगे। क्योंकि इस प्रकार भी तो शूद्र स्वर्ग में भी पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त तप करके पाप करे शूद्र और फल मिले एक ब्राह्मण या ब्राह्मण बालक को—अद्भुत कर्म फिलासफी है। राजा यदि धर्म से शासन नहीं कर रहा है, तो इसका फल राजा को मिलना चाहिए, प्रजा को नहीं। प्रजा में भी किसी एक व्यक्ति को मिले यह तो हो ही नहीं सकता। वेद में स्पष्ट लिखा है—'तपसे शूद्रमिति' यजुः ३०/५, अर्थात् तप के लिए शूद्र को रचा है। इन सब बातों के मनन करने से ही निश्चित होता है, कि कथा का अभिप्राय अन्य कुछ है और लोग अपने हृदय के भावों के अनुसार अन्य प्रकार से ही समझ बैठते हैं। हम प्रथम कह चुके हैं कि शूद्र शब्द वर्णवाची ही नहीं, किन्तु पापी अपराधी को भी शूद्र कहते हैं। 'शोचतीति शूद्रः' अर्थात्—कर्म विपाक के समय में जिसको शोक या पश्चाताप करना पड़े उसे भी शूद्र कहते हैं। यह शम्बूक किसी राग द्वेष से इस ब्राह्मण बालक को मार कर वन में छुप कर तप करता होगा। ....सम्भवतः ब्राह्मण बालक के वध करने वाले शम्बूक शूद्र (अपराधी) को ही श्री रामचन्द्रजी ने मारा है, शूद्र वर्ण के पुरुष को नहीं।....''[१७]

(४) गंगाजी के जल में मरने से मुक्ति—

"भागीरथ्या जलेचैव यो मृतः पुरुषोत्तमः।
पयोधरसं मातुर्नपिवेन्मुक्ततां व्रजेत् ॥ २५२ ॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्डे, पञ्चाख्याने पितृभक्ति निरूपणम्, अध्याय ५२]

---

१७. 'सनातनधर्म शास्त्रीय अछूतोद्धार निर्णय' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११५, ११६, ११८.

अर्थ—"जिस श्रेष्ठ पुरुष के प्राण गङ्गाजी के जल में छूटते हैं, वह पुनः माता के दूध का पान नहीं करता वरन् मुक्त हो जाता है।"

अन्य स्थलों में गंगाजी की महिमा—(जल स्पर्श से पाप दग्ध)

"गङ्गेतिस्मरणादेव क्षयं याति च पापकम्।
कीर्तनादंतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम्॥

स्नानात्पानाच्च जाह्नव्यां पितृणां तर्पणात्तथा।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिनेदिने॥ ६॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगामाहात्म्यकथनम्, अ. ६४

अर्थ—"गंगाजी के नाम का स्मरण करने मात्र से पातक कीर्तन, से अतिपालक और दर्शन से भारी भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गंगाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है।"

गंगाजी के सेवन से गति—

"तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेवतां न सा॥ २४॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगा माहात्म्य कथनम् अ. ६४

गंगाजल का पान करना सहस्त्रों चान्द्रायण व्रत से श्रेष्ठ है—

"चान्द्रायणसहस्त्राणि यश्चरेत्काय शोधनम्॥५५॥
पानं कुर्याद्यथेच्छं च गङ्गाम्भः स विशिष्यते॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगामाहात्म्य, अ. ६४

अर्थ—"एक मनुष्य अपने शरीर का शोधन करने के लिए सहस्त्रों चान्द्रायण करता है और दूसरा मन चाहा गंगाजल पीता है—उन दोनों में गंगाजल का पान करने वाला पुरुष ही श्रेष्ठ है।"

सैकड़ों योजन दूर से गंगा-गंगा कहने से विष्णुलोक में जाना—

"गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानांशतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७७ ॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगामाहात्म्य वर्णनम् अ. ६४
तथा ६ उत्तरखण्डे, उमापति नारद संवादे, गंगामाहात्म्य,
अ. ८१ श्लोक ३६

अर्थ—"जो सैकड़ों योजन दूर से भी 'गङ्गा-गङ्गा' कहता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्री विष्णुलोक को प्राप्त होता है।"

गंगाजी के सेवन से गति—

"पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः । ११४ ॥
सा गतिर्नभवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या ॥ ११५ ॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगामाहात्म्य कथनम् अ. ६४

अर्थ—"पाठ, यज्ञ, मंत्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभकर्मों से भी जीव को वह गति नहीं मिलती, जो गंगाजी के सेवन से प्राप्त होती है।"

कलिकाल में गंगाजी मोक्षप्रदा हैं—

"विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् ।
कृच्छ्राच्च क्षीपासत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः । १२२ ॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्ड, गंगामाहात्म्य कथनम् अ. ६४

अर्थ—"विशेषतः इस कलिकाल में सत्त्व गुण से रहित मनुष्यों को कष्ट से छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करने वाली गंगाजी ही हैं। गंगाजी के सेवन से अनन्त पुण्य का उदय होता है।"

गंगाजल से पाप नाश—

"अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥ २७ ॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, गंगामाहात्म्यम्, अ. ८१

अर्थ—सूर्य के उदय होने पर जैसे तीव्र अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार गंगाजल में स्नान करने वाला पापों को दूर कर शोभित होता है।

गंगा-स्नान से महापाप का नाश—

"प्रियाप्रिये न जानाति धर्मोधर्मौ न विन्दति।
स्नात्वा चैव तु गंगायां महापापात्प्रमुच्यते ॥ ३५ ॥

ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा सुरापी वालघातकः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दिवं याति च सत्वरम् ॥ ३७ ॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, गंगामाहात्म्य, अ. ८१

अर्थ—जो प्रिय अप्रिय और धर्म अधर्म को नहीं जानता है, परन्तु गंगा में स्नान करके महापापों से छुटकारा पा लेता है ॥ ३५ ॥

ब्रह्म हत्यारा, गोघातक, मदिरापान करने वाला, बालकों को वध करने वाला, सब पापों से छूटकर शीघ्र स्वर्ग को जाता है ॥ ३७ ॥

"सकृद्गंगाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा।
न नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत्।
व्रतदान तपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च ॥
गङ्गाबिन्दूभिषिक्तस्य न समा इति न श्रुतम् ॥

—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, विकुण्डलस्यपूर्वजन्मवृत्तान्त वर्णनम्, अ. ३१

अर्थ—"जो एक बार भी गंगाजी के जल में स्नान करके गंगाजल से पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि-राशि पाप किए हों, फिर भी वह नरक में नहीं पड़ता। हमारे सुनने में आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा पवित्रता के अन्यान्य साधन गंगा की एक बूंद से अभिषिक्त हुए पुरुष की समानता नहीं कर सकते।"

"गङ्गागङ्गेति गङ्गेति यैस्त्रिसन्ध्यमितोरितम् ।
सुदूरस्थैश्च तत्पापं हन्ति जन्मतयार्जितम् ॥ ५८ ॥

योजनानां सहस्रेषु गंगां यः स्मरतेनरः ।
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम् ॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय ८५

अर्थ—"जो तीन सन्ध्या से गंगा-गंगा कहता है, सुदूर से ही उसका तीन जन्मों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं । हजार योजन से जो गंगा का स्मरण करता है वह खराब काम करने वाला हो फिर भी उसकी परम गति (मुक्ति) हो जाती है ।"

समीक्षा—गंगा की महिमा कहते-कहते भी पुराणकर्त्ता थकता नहीं है । शक्कर-शक्कर कहने से मुँह मीठा नहीं हो सकता है । केवल गंगा-स्नान से मुक्ति मिलनी कठिन है । मुक्ति के लिए कठिन तपस्या करना पड़ता है । जप, यज्ञ, तप, सत्संग, ईश्वरोपासना आदि ही मुक्ति के कारण हैं ।

गंगा की इतनी महिमा है तो पौराणिक ईसाई, मुसलमानों की शुद्धि करने में क्यों हिचकते हैं । क्या गंगाजल के पान करने व स्नान करने से विधर्मी शुद्ध नहीं होता है ? यदि हो सकता है तो पौराणिकों को शुद्धि का द्वार खोल देना चाहिए । यदि शुद्धि का विरोध करते हैं तो इसका तात्पर्य है कि पुराण गप्प है ।

(५) वाराणसी में मरने से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति—

"वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैवयदृच्छया ।
अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते ॥ २५३ ॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टि खण्डे, पञ्चाख्यले पितृभक्ति निरूपणम् अ. ५२

अर्थ—"जो स्वेच्छानुसार वाराणसी में रह कर प्राण त्याग करता है । वह मनोवाञ्छित फल भोग कर मेरे स्वरूप में लीन हो जाता है ।"

समीक्षा—काशी में अनेक पापी रहते हैं। यदि सभी मनोवांछित फल प्राप्त करने लगें तो वैदिक मर्यादा लुप्त हो जाय। पापी को अवश्य दण्ड मिलता है। तीर्थ की महिमा बढ़ाने के लिए यह गप्प मारा गया है।

(६) तीर्थ फल किसको प्राप्त होता है ?—

"यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कार निवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ ९ ॥
अक्रोधवश्च राजेन्द्र सत्यशीले दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे सप्तर्षि संवाद, अ. १९

अर्थ—"जिसके हाथ, पैर और मन सब सुसंयत हों, जिसकी विद्या और तप तथा कीर्ति हो वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है। दान देनेवाला मन में संतुष्ट अहंकार से रहित हो वह तीर्थ फल का भोग करता है। क्रोधरहित, सत्यवक्ता, अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ से और सब प्राणियों को अपने समान समझे वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है।"

समीक्षा—तीर्थों में मारे मारे फिरने वाले पौराणिक अपने हृदय पर हाथ रख कर अपने से ही पूछें और अपने आचरण की स्वयं समीक्षा करें तो उन्हें स्पष्ट प्रतीत हो जायेगा कि उनका तीर्थों में मुक्ति के लिए भटकना व्यर्थ कष्ट प्राप्ति के सिवाय और कुछ नहीं है। क्या पौराणिकों के हाथ पैर अधर्म में प्रवृत्त नहीं होते हैं, क्या अपनी इन्द्रियों को वश में किया है, क्या दान नहीं लेते ? फिर तीर्थ का फल कैसे मिलेगा ?

(७) साम्प्रदायिक श्री वासुदेवाभिधान-स्तोत्र से चतुर्वर्ग की सिद्धि—

"ॐ अस्य श्री वासुदेवाभिधानस्तोत्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः ॐकारो देवता सर्वपातकनाशनार्थं चतुर्वर्ग साधनार्थं च जपे विनियोगः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इतिमन्त्रः ॥ ४० ॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्डे, वेनोपाख्याने, अ. ९८

अर्थ—"इस श्री वासुदेवाभिधान-स्तोत्र के अनुष्टुप् छन्द, नारद ऋषि, और ओंकार देवता हैं; सम्पूर्ण पातकों के नाल तथा चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिए इसका विनियोग है।"

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यही इस स्तोत्र का मूल मन्त्र है।"

समीक्षा—यह 'वासुदेवाभिधान-स्तोत्र' साम्प्रदायिक मन्त्र है। कृष्ण भक्ति के प्रचारकों ने इसमें प्रक्षेप किया होगा। वेदों में कहीं भी 'वासुदेव' शब्द नहीं है। कृष्णजी का एक नाम 'वासुदेव' है।

वेदों में 'गायत्री मन्त्र' की महिमा है और उसी के जाप करने से मानव-कल्याण हो सकता है।

(८) मृत्यु के समय 'नारायण' कहने से मुक्ति—

"एतावतालमघ निर्हरणाय पुंसां सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्यं पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥"

—पद्मपुराण, २ स्वर्गखण्डे, अध्याय ३१

अर्थ—"मनुष्यों के पाप दूर करने के लिए भगवान् के गुण, कर्म और नामों का सङ्कीर्तन किया जाय—इतने बड़े प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अजामिल जैसा पापी भी मृत्यु के समय 'नारायण' नाम से अपने पुत्र को पुकार कर भी मुक्ति पा गया।"

समीक्षा—अजामिल की कथा 'भक्तमाल' में आई है कि वह महान् पापी था पर अन्त में अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लिया तो वह वैकुण्ठ चला गया। यह भी गप्प है।

ईश्वर की उपासना, जप, तप, अग्निहोत्र आदि से मुक्ति मिलती है। जीवन पर्यन्त पाप करके केवल 'नारायण' कहने से मुक्ति मिल जाय तो सभी पाप करने लग जायें।

जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा फल भुगतना पड़ता है। अतः पुराणकर्त्ता ने सस्ती 'मुक्ति का मार्ग' दिखला कर साधारण जनता को मूर्ख बनाने की चेष्टा की है।

(९) शिव व पार्वती का जुआ खेलना—

"शङ्करश्च भवानी च क्रीडयाद्यूतमास्थितौ।
भवान्वाभ्यर्चिता लक्ष्मीर्येनुरूपेण संस्थिता।
गौर्वा जित्वा पुराशम्भुर्नंग्ने द्यूते विसर्जितः।
अतोऽयं शंकरो दुःखी गौरी नित्यं सुखे स्थिता॥ २६॥

प्रथमं विजयो यस्यास्तस्य संवत्सरं सुखम्।
एवं गते निशीथे तुजने निद्रार्धलोचने।
पराजये विरुद्धं स्यात्प्रतिपदयुदिते रवौ।
प्रातर्गोवर्धनः पूज्यो द्यूतं रात्रौ समाचरेत्।"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, दीपावली माहात्म्यवर्णनम् अ. १२२

अर्थ—"शिव और पार्वती ने भी जुआ खेला, पार्वती ने लक्ष्मी की पूजा की, इसीलिए शिवजी को जीतकर नंगा कर निकाल दिया था। शिवजी दुःखी हुए और गौरी प्रसन्न थी। पहिले जिसकी जीत हो, वही संवत्सर भर जीतेगा। (निशीथ) आधी रात्रि का नाम प्रसिद्ध है, जब सब लोग सो जावें, तब आधी रात जुआ खेले, सूर्योदय तक जिसकी हार हो वह अच्छा नहीं।"

समीक्षा—शंकरजी को पौराणिक ईश्वर समझते हैं। जब वे ही जुआ खेलते थे तब उनके अनुयायी क्यों न खेलेंगे?

"अक्षैर्मादिव्य"—[ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ३४, मन्त्र १३] = जुआ मत खेलो।

जब वेद का आदेश है कि जुआ न खेलो तब शंकरजी का जुआ खेलना वेद विरुद्ध हुआ।

(१०) मद्य-मांस भक्षण की चर्चा—

राजावलि ने मद्य, मांस, सुरा से पूजा की—

"मद्य मांस सुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः ॥ ५० ॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, कार्त्तिक माहात्म्य. अ. १२२

श्राद्ध में पितरों की मांस से तृप्ति—

"द्वौ मासौमत्स्यमांसेनत्रीन्मासान्हारिणेनतु ।
औरभ्रेणाथचतुरः शाकुनेनाथपंचवै ॥ १५३ ॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. ९

अर्थ—दो मास मछली के माँस में, तीन मास हरिण के, चार मास मेढे के मांस से और पांच मास विहित पक्षियों के मांस से पितरों की प्रसन्नता रहती है।"

मांसभक्षण—

"गोधाकूर्मः शशः खड्गः सल्लकश्चेति सप्तमाः ।
भक्ष्यान्पञ्चनखान्नित्यं मनुराह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥

मत्स्यान्सशल्कान्भुञ्जीत मांसं रौरवमेव च ।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च नान्यथा ॥ ३७ ॥

मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम् ।
वार्ध्रीणसं बकं भक्ष्यं मीनं प्राह प्रजापति ॥ ३८ ॥

शफरीसिंह तुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ ।
मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणीया द्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया ।
यथाविधिप्रयुक्तं च प्राणानामपि चात्यये ॥ ४० ॥

भक्षयेत्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते ।
औषधार्थशक्तो वा नियोगाद्यज्ञ कारणम् ॥ ४१ ॥

आमन्त्रितश्च यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥ ४२ ॥"
—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, भक्ष्याभक्ष्य नियम, अ. ५६

अर्थ—"गोधा (गोह), कछुआ, खरगोश, गैंडा, सेह इन पाँच नख वालों को प्रजापति मनु ने भक्ष्य कहा है ॥ ३६ ॥

सशल्कमत्स्य को रुरुमृग के मांस को, देवता और ब्राह्मणों के प्रति अर्पण करके खाए, अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥

मोर, तित्तिर, कबूतर, चातक, वार्ध्रीणस, बगला, मीन (मछली) इन सब को प्रजापति मनु ने भक्ष्य कहा है ॥ ३८ ॥

व्यासजी कहते हैं कि हे द्विजों में श्रेष्ठ, शफरी, सिंह तुण्ड तथा पाठीन रोहित ये भक्षणीय मत्स्य कहे गए हैं ॥ ३९ ॥

प्रोक्षित और द्विजों की कामना से सिद्ध किए हुए मांस को खाए, और देवकर्म पितृकर्मादिकों में यथाविधिविहित मांस को खाए, और प्राणान्त समय (औषधिरूप में) मांस को खाए ॥ ४० ॥

वृथा मांसों को न भक्षण करे, देवतादिकों को अर्पण करके शेष मांस को भक्षण करने में दोषी नहीं होता, वा औषधि के लिए अशक्त पुरुष विधि बिना भी मांस भक्षण करने पर दोषी नहीं होता ॥ ४१ ॥

जो पुरुष श्राद्ध व देव कार्य में आमन्त्रित मांस को नहीं खाता वह पुरुष जितने पशु के शरीर में रोम हों उतने वर्ष तक नरक को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

समीक्षा—मद्य, मांस, मछली आदि के भक्षण का विधान बतलाना अवैदिक है। स्वयं इसी पुराण में मांसभक्षण को अनुचित बतलाया गया है इससे पुराण पर 'वदतो व्याघात' दोष आता है।

"यज्ञंकृत्वापशुं हृत्वाकृत्वारुधिर कर्दमम् ।
यद्येवंगम्यतेस्वर्गोनरकः   केन गम्यते ॥ ३२३ ॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३

अर्थ—"यज्ञ स्तम्भ को छेद कर, पशु को मार कर, रुधिर का कीचड़ करके, इस तरह से यदि स्वर्ग में गमन हो तो नरक में कौन कर्म हो सकेगा ?"

अर्थात् ये कर्म करने वाले नरकगामी होते हैं ।

'यज्ञ' में पशुओं का वध करना और उनके मांस का भक्षण करना पुराणकार उचित बतलाता है जो भ्रमपूर्ण है, क्योंकि 'यज्ञ' को 'अध्वर' कहा जाता है ।

'अध्वर' शब्द की निरुक्ति में निरुक्तकार यास्कमुनिजी लिखते हैं : "अध्वर इति यज्ञनाम । ध्वरतिर्हिंसाकर्मा, तत्प्रतिषेधः"

—निरुक्त अ. १ । खं. ८

निरुक्तकार के इन शब्दों की व्याख्या श्री देवराज यज्वा अपने "निघण्टुभाष्य" में निम्नलिखित वाक्य द्वारा करते हैं । यथा—

"ध्वरतेर्वधकर्मणः, "पुंसि संज्ञायां घः"

—अष्टाध्यायी ३।४।११८

नञ्पूर्वः । ध्वर्याहिंसा, तदभावो यज्ञः ।

—निघण्टु. १।१७

इस व्याख्या का अभिप्रायः यह है कि 'अध्वर' शब्द दो हिस्सों में बना है । एक "अ" और दूसरा "ध्वर" । "अ" का अर्थ है—निषेध, और "ध्वर" का अर्थ है—हिंसा करना या वध करना । अतः 'अध्वर' का अर्थ हुआ कि जिसमें हिंसा या वध न किया जाय । इस प्रकार यज्ञ का नाम "अध्वर" होना ही इस सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है कि यज्ञ में हिंसा कदापि न होनी चाहिए । जिसमें हिंसा है वह यज्ञ नहीं । अतः यज्ञ में पशुवध सर्वथा निषिद्ध है ।

वेद में कहा है—

"पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् ॥"
—अथर्ववेद १९।३१।५

अर्थ—"मैंने दोपाए और चौपाए पशुओं तथा धान्य को खूब एकत्र किया है। आज्ञाकारी महान् प्रभु ने, पशुओं का तो दूध और औषधियों का सारभूत उत्तम अन्न मेरे (भोजन के लिए) नियत किया है।"

इसी पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय १०४ तथा १०५ में माता पार्वती, शिव के प्रति कहती हैं—

"ये ममार्चनमित्युक्त्वा प्राणिहिंसनतत्परा ।
तत्पूजनं ममामेध्यं यद्दोषस्तदधागेतिः ॥
मदर्थे शिव कुर्वन्ति तामसा जीवघातनम् ।
आकल्पकोटिं निरये तेषां वासो न संशयः ॥
यस्तु यज्ञे पशून्हत्वा कुर्याच्छोणित कर्दमान् ।
स पचेन्नरके तावद्यावल्लोमानि तस्य वै ॥
जानाति को वेदपुराणतत्त्वं ये कर्मठाः पण्डितमानयुक्ताः ।
लोकाधमास्ते नरकं पतन्ति कुर्वन्ति मूर्खाः पशुघातनं चेत् ॥"

अर्थ—"जो लोग, मेरी पूजा के ख्याल से प्राणियों की हिंसा करते हैं उन द्वारा की गई वह पूजा अपवित्र है। इस हिंसादोष से उनकी अधोगति अवश्य होगी। हे शिव ! तमोगुणी लोग ही मेरे लिए पशुवध करते हैं। निश्चय से ही, करोड़ों कल्पों तक, उनका, नरक में वास होता है। जो मनुष्य, यज्ञ में, पशुओं की हत्या करता है, वह नरक में असह्य कष्ट भोगता है। वास्तव में अभिमानी कर्मकाण्डी, वेद और पुराण के तत्त्व को नहीं जानते। पशुवध करने वाले लोकाधम हैं और मूर्ख हैं वे

अवश्य नरक में गिरते हैं।"[१८]

वेदादि सच्छास्त्रों में मद्य, मांस व मत्स्य भक्षण का विधान नहीं है। कुछ पाश्चात्य विद्वान् व उनके चरण-चिन्हों पर चलने वाले कतिपय भारतीय वेदों में अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का विधान बतलाते हैं। कुछ लोगों ने गोमाँस-भक्षणका प्रमाण देनेका भी प्रयास किया है।

वेदोंमें माँस—भक्षण के विषयमें निम्नलिखित निर्देश हैं—

(क) वेदों में मांस को राक्षस भोजन कहा है।

(ख) वेदों में क्षुधाकी निवृत्ति के लिए जौ, गेहूं, चना, तिल, आदि अन्नों के खानेका विधान है, माँस का नहीं है।

(ग) वेदों में मांस-भक्षणका नितान्त अभाव है।

(घ) वैदिक प्रार्थनाओं में गो, बकरी, भेड़ आदि पशुओं की, प्राप्ति व वृद्धिके लिए चर्चा है। उनकी प्राप्ति उनके दूध, घृत आदि के लिए है न कि उनके माँस के लिए है।

आजकल लोग मत्स्य व कुक्कुटाण्ड (मुर्गी के अण्डे) को माँस-भक्षण में नहीं गिनते हैं पाश्चात्य देशों में अण्डा शाकाहार में माना जाता है। परन्तु भारतवर्ष में यह शाकाहार में नहीं माना जाता है। यहाँ मांस मछली के समान ही अण्डा को आमिष भोजन माना जाता है।

मत्स्य-भक्षण के सम्बन्ध में राजर्षि मनुजी कहते हैं—

मत्स्यादः सर्वमाँसादस्तस्मान्मत्स्यान् विवर्जयेत्।

(मनुस्मृति ५।१५)

अर्थात् 'मछली को खाने वाले' 'सर्वमाँसादः' (सभी का माँस खाने वाले) कहलाते हैं।'

---

१८. "पं. विश्वनाथ विद्यालङ्कारकृत "वैदिक पशुयज्ञ मीमांसा" पृष्ठ १११-११२। [सितम्बर १९२५ ई. में सोम पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर द्वारा प्रकाशित]।

अण्डा भी माँस में ही सम्मिलित है। जब मुर्गी अण्डज है तो उसमें जीव क्यों नहीं ?

अण्डा भक्षण के पक्ष में एक यह युक्ति दी जाती है कि इसमें प्रोटीन है, परन्तु विटामिन (जीवनीयतत्त्व) की दृष्टि से भी अण्डे को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता है।

अण्डा भी माँस में ही सम्मिलित है किन्तु कुछ पाश्चात्य व उनके चरण-चिन्हों पर चलने वाले भारतीय अण्डे को माँस से पृथक मानते हैं और कहते हैं कि अण्डे में जीव नहीं होता अतः उसको भक्षण करने में कोई दोष नहीं है किन्तु यदि अण्डा भी भक्ष्य पदार्थ है तो पुनः विश्व में अभक्ष्य पदार्थ ही क्या रह गया ?

अण्डे में जीव न मानना भी बुद्धिसंगत नही। जब मुर्गी अण्डज है तो उसमें जीव क्यों नहीं ? अण्डा भक्षण करने वाले अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मिथ्या युक्तियाँ देते हैं।

अण्डा भक्षण के पक्ष में यह भी तर्क किया जाता है कि इसमें प्रोटीन है। प्रोटीन की आवश्यकता केवल ४० वर्ष तक बुद्धि अवस्था में होती है। वैज्ञानिकों का कथन है कि माँस की प्रोटीन मानव शरीर के लिए हितकर नहीं है।

जीवनीयतत्त्व (विटामिन) की दृष्टि से भी अण्डे को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। गोदुग्ध में ए. बी. डी. जी. विद्यमान है। अंगूर, गेहूं, चना, मटर आदि में पर्याप्त विटामिन है।

कुछ लोग यह तर्क करते हैं कि गोदुग्ध भी गाय के रक्त से बनता है अतः उसे पीने में पाप लगता है। लोगों का यह विचार भी ठीक नहीं है। तृण आदि खाने से पशु के पेट में जो रस बनता है उस रस से सीधा दूध बन जाता है दूध के काम जितना रस आता है उसे रक्त बनने की आवश्यकता नहीं। वह रस तो पशु के शरीर में स्थित दुग्ध निर्माण करने

वाले यंत्रों में आकर दूध बन जाता है। एक पन्द्रह सेर दूध प्रदान करने वाली गाय में पहिले पन्द्रह सेर रक्त बने और पुनः उससे दूध बने, यह नहीं होता है यदि यह तर्क बुद्धिसंगत है तो प्रतिदिन पंद्रह सेर रक्त बढने के कारण पहले तो गाय मोटी हो जाया करे पुनः उसका दूध बनने से वह पतली हो जाया करे। अतः घास आदि के रस से दूध सीधा बन जाता है। पशु जैसी जड़ीबूटियाँ खाते हैं उनके स्वाद और गन्ध की भी हल्की झलक दूध में ज्ञात होती है। यदि बकरी भांग के पत्तों को खाले तो उसके दूध पीने वाले को अवश्य भंग के समान नशा हो जाएगा।

यदि रक्त से दूध बनना मान भी लिया जाय तो जब रक्त का रसायनिक परिवर्तन होकर दूध बन जाता है तो यह एक नया पदार्थ बन जाता है। गोबर, मल मूत्र, हड्डी आदि खादों को खेत में डाला जाता है और रासायनिक परिवर्तन होकर जब गेहूँ, जौ, चना मकई चावल, फल आदि में बदल जाते हैं तो वे गोबर, हड्डी आदि नहीं रहते।

"जब हम गर्भहत्या को पाप मानते हैं तो अण्डा खाना पाप क्यों नहीं है? यह भी तो गर्भ-हत्या ही है? जब हम मनुष्यों की गर्भ-हत्या करने के लिए उद्यत नहीं हैं तो पक्षियों की गर्भहत्या करने का क्या अधिकार है? गर्भहत्या करने वाले को कानून से दण्ड मिलता है। अण्डे खाने वाले को भी कानून से दण्ड मिलना चाहिए। फिर, अण्डा पक्षी के रज और वीर्य का मिश्रण होता है। उसका खा जाना एक घृणित कर्म है। यह ऐसा ही घृणित कर्म है जैसा कि स्त्री और पुरुष के रज और वीर्य को निकालकर खा जाना घृणित कर्म होगा।........अण्डे में जो पौष्टिक तत्त्व बताए जाते हैं वे सब तत्त्व हमें दूध, दही, मक्खन, मलाई, अनाज, सब्जी, फल और मेवे खाने से अच्छी तरह मिल सकते हैं। इसलिए भी अण्डे खाने की आवश्यकता नहीं है। ....कई लोग पूछा करते हैं कि सामान्य अण्डे खाने में तो हिंसा का दोष हो सकता है। पर ऐसे अण्डे खाने में, जिनसे बच्चे नहीं पैदा हो सकते जिन्हें फेक्ड एग्ग [Faked egg] या निर्बीज

अण्डे कहते हैं क्या हर्ज है ? उनके खाने में तो हिंसा नहीं होगी। उन्हें क्यों न खा लिया जाये ? यह बात ठीक है कि ऐसे फेक्ड या निर्बीज अण्डे खाने में हिंसा वाला दोष नहीं आयेगा, परन्तु…तामसिक वृद्धि पैदा होने आदि के शेष सभी दोष निर्बीज अण्डों के खाने में भी आयेंगे। निर्बीज अण्डे खाने से सबीज अण्डे खाने की आदत पड़ने का डर भी रहेगा फिर यह पता लगाना भी सर्वसाधारण लोगों के लिए आसान नहीं है कि निर्बीज अण्डे कौनसा है और सबीज अण्डा कौनसा। निर्बीज अण्डे के धोखे में सबीज अण्डे भी खाए जा सकते हैं। इन सब कारणों से फेक्ड या निर्बीज अण्डे भी खाना उचित नहीं है।"[१९]

राज्यरत्न मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी ने "अण्डा और श्रीफल (नारियल), अण्डा और दूध, अण्डा और उदंयूष, अण्डा और पेड़े अण्डे और बादाम जल, यवागु श्रीखण्ड (मधुपर्क) तथा अण्डे, गुड़ चने तथा अण्डे से तुलना करके अण्डे से इन्हें श्रेष्ठतर बतलाया है।[२०]

रोग और अण्डा :—अण्डे का छिलका छिद्रमय होता है और इसीलिए रोग अणु तथा रोग जन्तु इसमें शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं।

डा. डी. आर. जोगलेकर बी. ए. लिखते हैं :—

"The shell of the egg is porous and consequently will permit the entrance of disease and other putrefactive germs And thus this food may be made unfit for human consumption in a comparatively short time."[२१]

---

१९. पं. प्रियव्रतजी वेदवाचस्पति कृत "मेरा धर्म" पुस्तक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४३-२४४

२०. देखो उनकी पुस्तक 'दिग्-विज्ञान' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२८ से १३४ तक

२१. 'Lessons on food' तुलना करो 'दिग्-विज्ञान' पृष्ठ १३४.

अर्थात् अण्डे का छिलका छिद्रमय होना है और इसलिए रोग तथा अन्य दूषित रोगजन्तु इसमें से अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। इसलिए यह भोजन बहुत थोड़े काल में ही मनुष्य के आहार के लिए योग्य नहीं रह सकता।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध डॉक्टर हेग सर्व प्रकार के मांस तथा अण्डा भोजन के लिए भारी निषेध करते हैं :—

'Eggs, for instance, I have been unable to find any uric acid or other members of the xanthin group such as I have found in meat, and yet their steady and graduated administration invariably brings about a large rise in the excretion of uric acid, and all the evil effects of its passage through the blood, so that I have had to exclude them entirely from my diet.'[२२]

अर्थात् 'दृष्टांत की रीति से अण्डों के स्वरूप में युरिक एसिड के अन्य अंश में नहीं पा सका जैसे कि मुझे मांस के अन्तर्गत मिले। तथापि उनका लगातार सेवन युरिक एसिड की भारी उत्पत्ति और अन्तर्गत सर्व रक्त विकारों का कारण है इसलिए मुझे अण्डों को भक्ष्य पदार्थों के गण से सर्वथा छोड़ना पड़ा।'

वैदिक प्रमाण :—

वेदों में मांस, मत्स्य, शराब का सर्वथा निषेध तो है ही साथ ही अण्डे का भक्षण करना भी निषेध है।

---

२२. 'Theory and dietary' तुलना करो 'दिग्–विज्ञान' पृष्ठ १३५, तथा डा. सत्यप्रकाशजी डी. एस. सी. कृत 'Humanitarian diet' pp. 157-158 [सन् १९४१ में आर्यसमाज, चौक, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, सस्ता संस्करण]

यः आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥
[अथर्ववेद, काण्ड ८, सूक्त ६, मंत्र २३]

इस मंत्र का अर्थ भिन्न विद्वानों ने किया है फिर भी अधिकांश विद्वान् इस मंत्र से अण्डा भक्षण का निषेध करते हैं।

पं. विश्वनाथजी विद्यालङ्कार—'जो आम मांस (कच्चे, घर में पके, तथा गौ के मांस) को खाते, जो पौरुषेय क्रवि (पितृशक्ति और मातृशक्ति की हत्या से प्राप्त मांस) को खाते हैं, जो गर्भों, (अण्डों तथा नवजात या छोटे छोटे पशु-पक्षियों) को खाते हैं इस प्रकार केशवों (जिनका देह कब्रस्तान बना हुआ है) का हम यहाँ से नाश करते हैं।'

इस मंत्र में कच्चे घर में पके, तथा गौ के मांस के खाने वालों; पितृ-शक्ति और मातृशक्ति की हिंसा करने वालों; अण्डों तथा नवजात या छोटे छोटे पशु-पक्षियों के खाने वालों के नाश करने की आज्ञा दी है।

आप आम, पौरुषेय, गर्भ शब्दों पर टिप्पणी में लिखते हैं:—

आम मांस के तीन अर्थ हैं- (क) कच्चा मांस, इसके लिए देखो वाचस्पत्य कोष यथा-आम्यते ईषत् पच्यते, आ+अम; ईषत्पक्वे, पाकरहिते ॥ (ख) घर में पका मांस। अमा-घर; निघं० अ० ३, खं० ४॥ अतः आम-घर सम्बन्धी, अर्थात् घर में पका हुआ। (ग) गौ का मांस। इस अर्थ के लिए आम शब्द पर आप्टे कोष देखो।

पुरुष शब्द से यहाँ, पुरुष और स्त्री दोनों का ग्रहण है। यहाँ "पिता मात्रा", सूत्र के आधार पर एकशेष मानना चाहिए। अतः पौरुषेय का अर्थ हुआ "पुरुष और स्त्री की हिंसा से प्राप्त"। इसलिए पौरुषेय क्रवि-पुरुष और स्त्री की हिंसा से प्राप्त मांस। मांस के प्राप्त करने में या तो पितृ-शक्ति की हिंसा होगी या मातृशक्ति की, क्योंकि संसार में प्राणी या तो पितृशक्ति सम्पन्न हैं या मातृशक्ति सम्पन्न।

गर्भ—उत्पादन का जीवन-तत्त्व, तथा नवजात या छोटे छोटे पशु-पक्षी।

क—देह, और शव—मुर्दा। "के" सप्तमी विभक्ति का एक वचन है। अत: केशवा:—वे मनुष्य जिनके देह अर्थात् पेट में मुर्दे निवास करते है। "क" का अर्थ देह है, इसके लिए देखो वाचस्पत्य तथा आप्टेकोष।"[२३]

पं. यशपालजी 'सिद्धान्तालङ्कार'—आपने ठीक वही अर्थ लिखा है जो पं. विश्वनाथजी विद्यालङ्कारका है।"[२४]

पं. धर्मदेवजी 'विद्यामार्तण्ड' :—इस मंत्र में कहा है कि जो कच्चा मांस खाते हैं, जो पुरुषों द्वारा पकाया हुआ मांस खाते हैं, "जो गर्भरूप अण्डों का सेवन करते हैं, उनके इस दुष्ट व्यसन का नाश करो।"[२५]

साहित्याचार्य पं. वैद्यनाथ शास्त्री, एम. ए.— जो आम मांस खावें अथवा जो पुरुष के मांस को खावें अथवा जो नवजात पशु-पक्षियों के गर्भों, अण्डों आदि को खावें—उनका नाश कर देना चाहिए।"[२६]

पं. मुनि देवराजजी 'विद्यावाचस्पति'—"जो मनुष्य अपक्व मांसको

---

२३. मासिक पत्र 'वैदिक विज्ञान' अजमेर, वर्ष १, अगस्त सन् १९३३ ई; सं. ११ पृष्ठ ४७१–४७२ में प्रकाशित "वेद और मांस भक्षण" शीर्षक लेख तथा "वैदिक पशुयज्ञ मीमांसा" पृष्ठ १२९ [प्रथम संस्करण, अजमेर]

२४. "शक्ति रहस्य" पृष्ठ ११९–१२० [सन् १९४८ ई; द्वितीय संस्करण जालन्धर]

२५. "वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ ४९९ [संवत् २०१४ वि. में प्रकाशन मंदिर, गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा प्रकाशित]

२६. "वैदिक युग और आदि मानव" पृष्ठ १९४ [सन् १९६४ ई. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

खाते हैं जो मनुष्य पकाए अर्थात् संस्कृत किए को और जो आंतों को, और अण्डों को भक्षण करते हैं उन सब वरे बालोंवाले पिशाचरूप दुष्टों को हे परमेश्वर ! यहाँ से अदर्शित कीजिए।"[२७]

पं.नरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ---"(ये केशवा:) जो पिशाच कामी लोग (आमं मांसं अदन्ति) कच्चा मांस खाते, (ये च पौरुषेयं क्रवि:) और जो पुरुष सम्पादित अर्थात् पका हुआ मांस खाते हैं, (गर्भान् खादन्ति) और जो अण्डों को खाते हैं, (तान्) कच्चा-पक्का अण्डा। इन तीनों प्रकार के मांस को खानेवाले कामियों को (इत:) यहाँ से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं। केशा: दुर्व्यसनानि सन्ति येषां ते केशवा:, केशाद्वोऽन्यतरस्यां सूत्र से 'केश' से 'व' प्रत्यय। इस मंत्र का सायणाचार्य ने भी यही अर्थ किया है।"[२८]

शास्त्रार्थ-महारथी पं. जे. पी. चौधरीजी काव्यतीर्थ—"जो लोग कच्चे अथवा मनुष्य के पकाये अथवा अण्डों को खाते हैं, ऐसे दुष्टों का नाश करता हूँ।"[२९]

व्याख्यानवाचस्पति, राज्यरत्न पं. आत्मारामजी अमृतसरी—"जो कच्चे मांस को खाता है अथवा किसी से पकवा (बनवा) कर खाता है और जो अण्डों को खाता है राजा उनको यहाँ से दूर हटाने का दण्ड दे।"[३०]

---

२७. "वैदिक भारत में यज्ञ और उसका आध्यात्मिक स्वरूप" पृष्ठ १६६ [सन् १९६० ई. में हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर द्वारा प्रकाशित]

२८. "यज्ञ में पशुवध वेद विरुद्ध," द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २७

२९. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४३. [प्रथम संस्करण, चौधरी एण्ड सन्स, नीची बाग, वाराणसी]

३०. "दिग्-विज्ञान" पृष्ठ १३७ (संवत् १९८१ ई. में जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित)

डा. सत्यप्रकाश डी. एस-सी. डा. बाबूराम सक्सेना एम. ए. डी. लिट्. डा. धीरेन्द्र वर्मा एम. ए. डी. लिट्, श्री मदनमोहन सेठ. एम. ए. तथा पं. गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम. ए —

"We ought to destroy them who eat ama mansa (cooksd as well as uncooked meat, and also the cow-meat), and pauruseya kravi (meat involving the destruction of mal es and females), who eat foetus (including eggs) and them who have thus made their bodies the graveyards."[31]

अर्थात् "जो आम मांस (पके कच्चे मांस और गोमांस भी), और पौरुषेय क्रवि (पुरुष और स्त्री सम्बन्धी मांस) जो भ्रूण (अण्डा) और जिन्होंने अपने देह को कब्रिस्तान बनाया है उनका हमें नाश कर देना चाहिए।"

इन उपर्युक्त तेरह विद्वानों ने इस मंत्र से स्पष्ट अण्डा भक्षण का निषेध तात्पर्य निकाला है।

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी[३२]; पं. श्रीराम शर्मा आचार्य[३३]; पं. मोहनलाल महतो 'वियोगी'[३४]; पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार,

---

31. "Humanitarian diet" PP. 187.

३२. साप्ताहिक पत्र "पाञ्चजन्य" लखनऊ, मार्गशीर्ष शुक्ल १४, संवत् २००९ वि. में प्रकाशित "गौरक्षण या गौमक्षण" शीर्षक लेख जो 'सरिता' के उत्तर में था।

३३. "अथर्ववेद सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित" प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३५.

३४. "जातककालीन भारतीय संस्कृति" पृष्ठ २७० [सन् १९५८ ई. में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ३ द्वारा प्रकाशित]

खाते हैं जो मनुष्य पकाए अर्थात् संस्कृत किए को और जो आंतों को, और अण्डों को भक्षण करते हैं उन सब बरे वालोंवाले पिशाचरूप दुष्टों को हे परमेश्वर ! यहाँ से अदर्शित कीजिए।"[२७]

पं. नरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ---"(ये केशवाः) जो पिशाच कामी लोग (आमं मांसं अदन्ति) कच्चा मांस खाते, (ये च पौरुषेयं क्रविः) और जो पुरुष सम्पादित अर्थात् पका हुआ मांस खाते हैं, (गर्भान् खादन्ति) और जो अण्डों को खाते हैं, (तान्) कच्चा-पक्का अण्डा। इन तीनों प्रकार के मांस को खानेवाले कामियों को (इतः) यहाँ से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं। केशाः दुर्व्यसनानि सन्ति येषां ते केशवाः, केशाद्वोऽन्यतरस्यां सूत्र से 'केश' से 'व' प्रत्यय। इस मंत्र का सायणाचार्य ने भी यही अर्थ किया है।"[२८]

शास्त्रार्थ-महारथी पं. जे. पी. चौधरीजी काव्यतीर्थ---"जो लोग कच्चे अथवा मनुष्य के पकाये अथवा अण्डों को खाते हैं, ऐसे दुष्टों का नाश करता हूँ।"[२९]

व्याख्यानवाचस्पति, राज्यरत्न पं. आत्मारामजी अमृतसरी---"जो कच्चे मांस को खाता है अथवा किसी से पकवा (बनवा) कर खाता है और जो अण्डों को खाता है राजा उनको यहाँ से दूर हटाने का दण्ड दे।"[३०]

---

२७. "वैदिक भारत में यज्ञ और उसका आध्यात्मिक स्वरूप" पृष्ठ १६६ [सन् १९६० ई. में हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर द्वारा प्रकाशित]
२८. "यज्ञ में पशुवध वेद विरुद्ध," द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २७
२९. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४३. [प्रथम संस्करण, चौधरी एण्ड सन्स, नीची बाग, वाराणसी]
३०. "दिग्-विज्ञान" पृष्ठ १३७ (संवत् १९८१ ई. में जयदेव ब्रदर्स, बडौदा द्वारा प्रकाशित)

डा. सत्यप्रकाश डी. एस-सी. डा. बाबूराम सक्सेना एम. ए. डी. लिट्. डा. धीरेन्द्र वर्मा एम. ए. डी. लिट्, श्री मदनमोहन सेठ. एम. ए. तथा पं. गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम. ए —

"We ought to destroy them who eat ama mansa (cooksd as well as uncooked meat, and also the cow-meat), and pauruseya kravi (meat involving the destruction of mal es and females), who eat foetus (including eggs) and them who have thus made their bodies the graveyards."[३१]

अर्थात् "जो आम मांस (पके कच्चे मांस और गोमांस भी), और पौरुषेय क्रवि (पुरुष और स्त्री सम्वन्धी मांस) जो भ्रूण (अण्डा) और जिन्होंने अपने देह को कब्रिस्तान बनाया है उनका हमें नाश कर देना चाहिए।"

इन उपर्युक्त तेरह विद्वानों ने इस मंत्र से स्पष्ट अण्डा भक्षण का निषेध तात्पर्य निकाला है।

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी[३२]; पं. श्रीराम शर्मा आचार्य[३३]; पं. मोहनलाल महतो 'वियोगी'[३४]; पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार,

---

31. "Humanitarian diet" PP. 187.

३२. साप्ताहिक पत्र "पाञ्चजन्य" लखनऊ, मार्गशीर्ष शुक्ल १४, संवत् २००९ वि. में प्रकाशित "गोरक्षण या गोभक्षण" शीर्षक लेख जो 'सरिता' के उत्तर में था।

३३. "अथर्ववेद सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित" प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३५.

३४. "जातककालीन भारतीय संस्कृति" पृष्ठ २७० [सन् १९५८ ई. में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ३ द्वारा प्रकाशित]

मीमांसातीर्थ[३५]; पं. प्रियरत्नजी आर्ष[३६]; वैद्य पं. रामगोपालशास्त्री[३७]; पं. आर्यमुनिजी[३८]; 'गर्भान्' का अर्थ 'गर्भों को खाते हैं' करते हैं।

अण्डा भी तो पक्षियों के गर्भ ही हैं। इनमें किसी किसी ने अण्डा खाने वाले को राक्षस क्रिमी आदि भी कहा है।

अतः इन प्रमाणों में आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मांस व कुक्कुटाण्ड, अथवा मोर, वतक, कबूतर आदि किसी भी पक्षी का अण्डा भक्षण करना वेद विरुद्ध है। आधुनिक वैज्ञानिक भी अण्डे को हितकर नहीं बतलाते हैं।

११. गंगाजी की उत्पत्ति—

"महादेव उवाच।

पूर्वजानां हितार्थाय गतोऽसौ हैम के गिरौ।
तत्र गत्वा तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तदा ॥१०॥
आदिदेवः प्रसन्नोऽभूद्योऽसौ देवो निरञ्जनः।
तेन दत्ता इयं गङ्गा आकाशात्समुपस्थिता ॥११॥
तत्र विश्वेश्वरो देवो यत्र तिष्ठति नित्यशः।
गङ्गा दृष्ट्वा ऽऽगतां तेन गृहीता जाह्नवी तदा ॥१२॥
जटाजूटे च संधार्य वर्षाणामयुत स्थितम्।
न निःसृता तदा गङ्गा ईशस्यैव प्रभावतः ॥१३॥

---

३५. "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ५०९
३६. "अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र" पृष्ठ २४० [सन् १९४७ ई. सार्वदेशिक सभा, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित]
३७. "वेदो में आयुर्वेद पृष्ठ ७३ (वि. संवत् २०१३ में ला. मदनमोहनलाल आयुर्वेदिक अनुसन्धानट्रस्ट, दिल्ली द्वारा प्रकाशित)
३८. "वैदिक काल का इतिहास" पृष्ठ ६० (संवत् १९८२ वि. में पं. देवदत्त शर्मा कर्णवास, जिला बुलन्दशहर द्वारा प्रकाशित)

विचारितं तदा तेन क्व गतामम मातृका।
स ध्यानेन विचार्यैवं गृहीता चेश्वरेण तु ॥१४॥
ततः कैलासमगमत्स तु भगीरथो नृपः।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ। ह्यकरोदुल्वणं तपः ॥१५॥
आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम्।
एकं केशं परित्यज्य दत्ता त्रिपथगातदा ॥१६॥
स गृहीत्वा गतो गङ्गां पाताले यत्र पूर्वजाः।
अलकनन्दा तदा नाम गङ्गायाः प्रथमं स्मृतम् ॥१७॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, अध्याय २२

अर्थ—"महादेवजी बोले कि उसने (भागीरथ ने) अपने पूर्व पुरुषाओं की भलाई के लिए हिमालय पर जाकर दश सहस्र वर्षों तक तपस्या की ॥१०॥ तब आदिदेव निरञ्जन प्रसन्न हुए। उन्होंने आकाश से इस गङ्गाजी को दिया ॥११॥ वहीं पर विश्वेश्वर नित्य स्थित रहते हैं। जब भागीरथ ने गंगाजी को आते न देखा जो महादेवजी की जटाओं में दश सहस्र वर्ष स्थित रही और उन्हीं के प्रभाव से न निकलीं ॥ १२-१३ ॥ भागीरथ ने विचार किया कि मेरी माता कहाँ गई और ध्यान से जाना कि महादेवजी ने ग्रहण करली ॥१४॥ तब भागीरथ महाराज कैलास पर गए और वहाँ जाकर घोर तप किया ॥१५॥ महादेवजी प्रसन्न होकर बोले कि मैं गंगाजी को दूँगा उसी समय एक बाल गंगाजी को दिया ॥१६॥ वह गंगा को लेकर पाताल में गए जहाँ उनके पूर्वज (भस्म हुए) थे। गंगाजी का प्रथम नाम अलकनन्दा था ॥१७॥

समीक्षा—भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न रीति से गंगाजी की उत्पत्ति बतलाई गई है जो गप्प है। पुराणकार को भूगोल का भी ज्ञान नहीं है। गंगा हिमालय पहाड़ के गंगोत्री से निकलती है। यही उनका उद्गम स्थान है।

मानव का जीवन सहस्रवर्ष तक होना कठिन है पुनः भगीरथ ने किस प्रकार तपस्या की? सहस्रवर्ष तक गंगाजी का महादेवजी की जटा में स्थित रहना भी असम्भव है। यदि यह घटना सत्य है तो गंगाजी शंकरजी की पुत्री हुई। पौराणिक शिवलिङ्ग पर गंगाजल चढ़ाते हैं। पिता के कामध्वज पर पुत्री को डालना कहाँ की सभ्यता है? यदि शंकरजी को पिता माना जाय तो पौराणिक उनके पुत्र हुए। क्या पुत्र का यही धर्म है कि लड़की को पिता के उपस्थेन्द्रिय पर डाले?

यह वैदिकमार्ग है कि वाममार्ग है?

पुराणकर्त्ता ने यह गप्प मारी है।

१२. राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों की उत्पत्ति—

संगति-रोहित से वृक और वृक बाहू समुत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम सगर था जो कि परम धार्मिक राजा हुआ था। उनकी दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम प्रभा और दूसरी का नाम भानुमती था। इन दोनों ने पुत्र की कामना से पहिले और्वाग्नि की आराधना की थी।

"और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्।
एकाषष्टि सहस्राणि सुतमेकं तथापरा ॥१४६॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे आदित्यवंशकथनम् अध्याय ८

अर्थ—"समाराधन से सन्तुष्ट होकर और्व ने यथेष्ठ वरदान दिया था। इनमें से एक ने साठ सहस्र पुत्र और दूसरी ने एक पुत्र ही वंश को चलाने वाला स्वीकार किया था।"

समीक्षा—एक पुरुष को साठ सहस्र पुत्र का होना असम्भव है। किसी पुरुष के लिए दश से अधिक पुत्र नहीं उत्पन्न करना चाहिए यह वेद का आदेश है।

अतः पुराणकर्त्ता ने गप्प मारा है।

१३. ब्रह्माजी के ललाट से सहस्र कवच वाले वीर का उत्पन्न होना—

"छिन्नेवक्त्रे पुरा ब्रह्मा क्रोधेन महतावृतः ।
ललाटे स्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाऽताडयद्भुवि ॥३॥

स्वेदतः कुंडली जज्ञे स धनुस्कोमहेषुधिः ।
सहस्रकवची वीरः किंकरोमीत्युवाचह ॥४॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय १४

अर्थ—"(पुलस्त्य मुनि ने कहा)—प्राचीनकाल में मुख के छिन्न हो जाने पर ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध हो गया था और उस क्रोध के अतिशय के कारण उनके ललाट पर पसीना उत्पन्न हो गया था जिसे लेकर उन्होंने भूमि पर ताड़ित किया था ॥३॥ उस पसीने की कुण्डली हुई और उसने वह एक धनुषधारी महेषुधि सहस्रकवचवाला वीर उत्पन्न किया था जो उठकर कहने लगा कि मैं क्या करूँ ? ॥४॥"

समीक्षा—क्या इस प्रकार की उत्पत्ति सृष्टिनियम के अनुकूल व वैज्ञानिक है ? नहीं । कभी पसीने से सहस्रकवचवाला वीर उत्पन्न हो सकता था ? यह तो 'भंग की तंरग' में लिखा हुआ गप्प है ।

१४. स्कन्द (विशाख, षड्वक्त्र और कार्त्तिकेय) की विचित्र उत्पत्ति—

उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः ।
ततस्तुहर्ष सम्पूर्णाः पद्मपत्र स्थितं पयः
तस्यै ददुस्तपा चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥१३८॥

पीते तु सलिले चैव तस्मिन्नेव क्षणे वरः ।
विपाट्य देव्याश्चततो दक्षिणं कुक्षिमुद्गतः ।
निश्चक्रामाद्भुतो बालो रोगशोकविनाशनः ।

प्रभाकर करव्रातप्रकारप्रकरप्रभुः ॥१४०॥

गृहीत निर्मलोदग्रशक्ति शूलाङ्कुशोऽनलः ।
दीप्तो मारयितुं दैत्यानुत्थितः कनकच्छविः ।
एतस्मात्कारणादेव कुमारश्चापि सोऽभवत् ।
वामं विदार्य निष्क्रान्तस्ततो देव्या "पुनः शिशु" ॥१४२॥

स्कन्दोऽग्निवदनाद्वह्नेः शुभ्रात्षड्वदनोऽरिहा ।
कृत्तिकासलिला देवशाखाभिः सविशेषतः
शाखाः शिवाः समाख्याताःषट्सु वक्त्रेषु विस्तृताः ।
यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः ॥१४४॥

स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः ॥१४५॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे, कृष्णवर्णाया, पार्वत्याः
शङ्करेण विनोदकरणम्, अध्याय ४६

अर्थ—(पुलस्त्य मुनि ने कहा)—"इस प्रकार के कृत्तिकाओं के द्वारा कही हुई गिरिजा ने कहा था कि ऐसा हो जावे। उस समय उसके समस्त शरीर के अवयव अनिन्दित रहे थे और इसके पश्चात् सब अवयव हर्ष से परिपूर्ण थे। फिर पद्म पत्र में स्थित जो जल था उसे कृत्तिकाओं ने उस गिरिजा को दे दिया था और उसने क्रम से उसका पान कर लिया था। उस जल से पीने पर उसी क्षण में वह वर देवी कुक्षि का विपाटन करके दक्षिण कुक्षि में वह उद्गत हो गया था। फिर एक अद्भुत बालक जो रोग और शोक का विनाश करनेवाला था, निकला। उस बालक की प्रभा प्रभाकर (सूर्य) की किरणों के समूह के समान थी। उस शिशु ने निर्मल उदग्र शक्ति, शूल, अंकुश और अनल को ग्रहण कर रखा था, अत्यन्त दिप्ति से युक्त था। वह सुवर्ण के समान छवि वाला समस्त दैत्यों को मारने के लिए उठकर खड़ा हो गया था। इसी कारण वह कुमार हुआ था। वाम भाग को विदीर्ण करके फिर देवी से शिशु निकला था। वण्हि के शुभ्र वदन से स्कन्द हुआ जिसके छः मुख थे और वह शत्रुओं के हनन करने वाला था। कृत्तिका के सलिल से ही विशेष कर वह शाखाओं से युक्त था॥

उसके छः मुखों से वे विस्तृत शाखाएँ शिवा नाम से पुकारी गईं थी। यही कारण है कि वह षण्मुख लोकों में विशाख इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उस बालक के स्कन्द, विशाख, षड्वक्त्र और कार्तिकेय ये नाम प्रसिद्ध हैं।"

समीक्षा—कुमार व स्कन्द का जन्म जैसा यहाँ दिया हुआ है वह सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। मनुष्य का कोई भी बच्चा जन्म लेते ही उठकर खड़ा नहीं हो सकता है और न शूल, अंकुश व अनल सहित गर्भ से उत्पन्न हो सकता है। पुराणकर्त्ता ने यहाँ गप्प मारा है।

१५. पुष्करतीर्थ की प्रशंसा—

"सायंप्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः।
उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु भारत ॥२३१॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे, ब्रह्मयज्ञ वर्णनम्
अध्याय ३४

अर्थ—"सायंकाल और प्रातःकाल में दोनों समय में जो कोई पुरुष दोनों हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थों का स्मरण किया करता है जैसे उसने सम्पूर्ण तीर्थों में उपस्पर्शन कर लिया हो।"

समीक्षा—पुष्कर तीर्थ की महिमा बढ़ाने के लिए यह लीला रची गई है। यह पुष्कर तीर्थ अजमेर के पास राजस्थान प्रान्त में है।

'तीर्थ', उसे कहते हैं जो 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है।

जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डूबोकर मारने वाले हैं।

"समान तीर्थे वासी" —अष्टाध्यायी ४।४।१०७

"जो ब्रह्मचारी एक आचार्य (से) और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थ सेवी होते हैं।"

१६. राम नाम की अद्भुत महिमा—

"रामरामेति रामेति च पुनर्जपन् ।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः ।।२१।।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ।।३३३।।"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, उमापति नारद संवादे विष्णोर्नाम सहस्रनामैक, अ० ७१

अर्थ—"राम-राम को पुनः जप करे। वह चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है इसमें तनिक सन्देह नहीं है ।।२१।। राम नाम सुन्दर है सहस्रनामों के तुल्य श्रेष्ठनाम रामनाम है।।३३३।।"

समीक्षा—'राम-राम' जपने से मुक्ति नहीं मिल सकती है। यदि चाण्डाल भी 'राम-राम' से पवित्र होता है तो क्या अन्य विधर्मी पवित्र नहीं हो सकते हैं ? पुनः शुद्धि का विरोध क्यों किया जाता है ?

परमात्मा का श्रेष्ठ नाम 'ओ३म्' है। वेद शास्त्रों में भी 'ओ३म्' की ही चर्चा है। वेदों में 'राम' की ईश्वर के रूप में कहीं भी चर्चा नहीं है।

१७. 'कृष्ण' नाम की महिमा—

"कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति इति वा योजपन्पठन् ।
इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ ।।२३।।"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, अ. ७१

अर्थ—"जो कृष्ण-कृष्ण जपता है या पढ़ता है वह इस लोक को छोड़कर विष्णु के समीप आनन्द से रहता है।"

समीक्षा—'कृष्ण' परमात्मा का नाम नहीं है। वसुदेव के पुत्र कृष्ण थे जिनके सम्बन्ध में भागवतकार ने अत्यन्त अश्लील बातें लिखकर उनके चरित्र को कलङ्कित किया है।

महाभारत में कृष्ण का चरित्र उत्तम बतलाया है। वे योगीराज थे। परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम 'ओ३म् है।

यह तो कृष्णभक्ति प्रचारकों की साम्प्रदायिक लीला है।

(१८.) रामाश्वमेध यज्ञ में वेदव्यासजी की उपस्थिति

"नारदोऽसितनामा च पर्वतः कपिलो मुनिः।
जातूकर्ण्योऽङ्गिराव्यास आर्ष्टिषेणोऽत्रिरासुरिः ॥३२॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्डे, अध्याय ९

अर्थ—"नारद, कपिल, जातुकर्ण्य, अङ्गिरा, व्यास, आर्ष्टिषेण, अत्रि आदि ऋषि, मुनि, (अश्वमेध यज्ञ में) उपस्थित हुए।"

समीक्षा—रामाश्वमेध यज्ञ में सत्यवती के पुत्र वेदव्यास की उपस्थिति लिखी है यह मिथ्या है क्योंकि व्यास कलियुग के प्रारम्भ में हुए थे और श्री रामचन्द्रजी त्रेता में हुए थे।

(१९) सस्ती मुक्ति (मोक्ष)—

"यद्यदिष्टं पठन्त्येतच्छृण्वन्ति चमुमुक्षवः।
लभन्ते तत्तदेवाऽशु प्रसादात्कमलापतेः ॥५२॥

श्लोकार्धश्लोकमेकं वाश्लोक पादमथापिवा।
नरः पठित्वाश्रुत्वाच लभतेवाञ्छितं फलम् ॥५३॥

लिखित्वालेखयित्वावा यः शास्त्रमिदमर्चयेत्।
स विष्णुपूजनस्यैव फलं प्राप्नोतिमानवः ॥५४॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्डे, युगधर्म निरूपणम्, अ० २६

अर्थ—"जो मोक्ष के इच्छुक पुरुष अपने हृदय में अपना अभीष्ट मनोरथ किया करते हैं वे सभी मनोरथ इसके (क्रियायोगसार) पठन एवं श्रवण करने से पूर्ण हो जाया करते हैं। भगवान् विष्णु उस पर प्रसन्न हो जाते

हैं। उन्हीं के प्रसाद से वे सम्पूर्ण कामनाएँ बहुत ही शीघ्र सफल हो जाया करती हैं ॥५२॥ यदि इस क्रियायोगसार का सम्पूर्ण भाग कोई पठन या श्रवण करने का सुअवसर किसी भी कारणवश न पा सके तो इसका श्लोक, या आधा ही श्लोक, अथवा श्लोक का चौथा भाग भी पठन कर लेवे तो उसका भी महत्व होता है कि उसके सभी वाञ्छित फल प्राप्त हो जाया करते हैं ॥५३॥ इसको स्वयं लिख कर या किसी योग्य विद्वान् से लिखवाकर जो इस शास्त्र की समर्चना नित्य किया करता है वह मानव निश्चय ही भगवान् विष्णु के पूजन करने का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करता है ॥५४॥"

समीक्षा—आज तक तो किसी पौराणिक की कामना पूर्ण न हुई तो मोक्ष क्या प्राप्त हो सकता है ?

पुराण के एकाध श्लोक के पठन व श्रवण से मनोवांछित फल की प्राप्ति असम्भव है।

पुराण के प्रचार के लिए यह महत्व प्रदर्शन किया गया है।

(२०) आलस्यवाद की चर्चा—

"ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा ॥२६॥
आमुष्मिकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।
अतो हि तत्कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा नरैः ॥२७॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, मन्त्रदीक्षाविधि वर्णनम्, अध्याय ८२

अर्थ—"वर्तमान में तो सदा वही होगा जो पूर्व कर्म का फल है ॥२६॥ भविष्य के लिए स्वयं कृष्णजी करेंगे। अतः उसके लिए बुद्धिमानों को यत्न का त्याग कर देना चाहिए ॥२७॥"

समीक्षा—पुराणकर्त्ता ने 'ग्रालस्यवाद' को प्रोत्साहन दिया है। मनुष्य को पुरुषार्थी होना चाहिए।

कृष्णजी तो स्वयं मर गए वे भविष्य के लिए क्या करेंगे ? ग्रतः बुद्धिमानों को यत्न का त्याग नहीं करना चाहिए।

(२१) 'ऊद्ध्र्वपुण्ड्र' की महिमा—

"ऊद्ध्र्वपुण्ड्र मूद्ध्र्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते।
चण्डालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥२३॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, वृन्दावनमाहात्म्ये
देवीश्वर संवादे तिलकादि निर्णय, ग्र० ७९

अर्थ—"जिसके लालट में ऊद्ध्र्वपुण्ड्र व ऊर्ध्वरेखा दिखाई देती है वह चण्डाल भी शुद्धात्मा, पूज्य है इसमें संशय नहीं है।"

समीक्षा—ऊद्ध्र्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, ग्रादि ललाट में चन्दन लेप करना सम्प्रादायिक है। इस प्रकार के चन्दन से न कोई पवित्र हो सकता है ग्रौर न मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

(२२) एकादशी माहात्म्य—

येऽन्नमश्नन्ति, पापिष्ठाश्चैकादश्यांहि विड्भुजः।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ ! भुक्तिमाश्रित्य केवलम् ॥१२॥

बहूनि विविधान्येव तिष्ठन्ति दुरितानि च।
दर्शकाले यथा स्त्रीणां सङ्गमे कलुषं महत् ॥

एकादश्यां तथैवान्नभक्षणे वृजिनं भवेत्।
रोगिणश्च तथा खञ्जकाससोदरकुष्ठकाः ॥

भवन्ति प्राणिनस्ते वै तस्यामन्नस्य भक्षणे।
ग्रामसूकरतां यान्ति दारिद्रयं च प्रयान्ति वै ॥१५॥

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्डे, एकादशी माहात्म्य
वर्णनम् ग्रध्याय १५

अर्थ—"जो एकादशी तिथि के उपवास वाले दिन में अन्न का भक्षण किया करते हैं वे महान् पापिष्ठ हुआ करते हैं और विड् का ही अशन करते हैं। हे द्विजों में श्रेष्ठ। एकादशी के दिन जो मुक्ति का केवल आश्रय ग्रहण करते हैं वे बहुत प्रकार के दुरित हुआ करते हैं जिस तरह दर्शकाल में स्त्रियों के संगम करने में महान् पाप होता है वैसा ही महान् पाप एकादशी के दिन अन्न भक्षण करने से हुआ करता है। एकादशी के दिन में अन्न के भक्षण का पूर्णतया निषेध शास्त्रों ने बतलाया है। उस दिन अन्न के भक्षण से महान् पाप होता है। उस दिन अन्न भक्षण से रोग-खञ्ज-उदररोग और कुष्ठ रोगी वाले हो जाते हैं। एकादशी तिथि के दिन अन्न के भक्षण करने से प्राणियों को अनेक रोगों की उत्पत्ति हो जाया करती है। ऐसे अन्न खाने वाले प्राणी ग्रामशूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करते हैं और उनको दरिद्र जीवन भी व्यतीत करना पड़ता है।"

समीक्षा—महर्षि दयानन्दजी सरस्वती 'एकादशी माहात्म्य' की आलोचना करते हुए लिखते हैं,...."एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति। जितने पाप हैं वे सब एकादशी के दिन अन्न में बसते हैं। इस पोपजी से पूछना चाहिए की किसके पाप उसमें बसते हैं? तेरे वा तेरे पिता आदि के? जो सब के सब पाप एकादशी में जा बसे' तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिए। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उल्टा क्षुधा आदि से दुःख होता है। दुःख पाप का फल है। इससे भूखे मरना पाप है। ....वङ्गाल में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोप को दया से क्या काम? "कोई जीवो वा मरो पोपजी का पेट पूरा भरो" भला गर्भवती वा सद्यो विवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिए। परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधान

लगे। उस दिन शर्करावत् (शर्बत) वा दूध पीकर रहना चाहिए। जो भूख में नहीं खाते और विना भूख के भोजन करते हैं वे दोनों रोग सागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियों के कहने लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।"[३९]

'एकादशी' का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि दश इन्द्रियाँ और एक मन कुल ग्यारह (एकादशी) का निरोध करना चाहिए।

(२३) अवैष्णवों से सम्भाषण न करो—

अवैष्णवानां सम्भाषणावन्दनादि विवर्जयेत् ॥३५॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्डे, वृन्दावन माहात्म्या अध्याय ८२

अर्थ—'अवैष्णवों के साथ सम्भाषण और वन्दनादि का परित्याग करे।'

समीक्षा—वैष्णव सम्प्रदायवादियों ने यह प्रक्षेप किया होगा।

वैष्णव सम्प्रदाय के आद्यप्रवर्तक निश्चित ही कंजर थे—

पं. रामनारायणदासजी सम्पादित 'रामार्चनपद्धतिः' पृष्ठ २-३ से 'लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्.....' श्लोक में कहा गया है कि वैष्णव सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक लक्ष्मीनाथ हैं। यह लेख सर्वथा असत्य है। स्वामी दयानन्दजी ने 'लक्ष्मीनाथ' लिखकर वैष्णव मत की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। उसमें भी गुरु परम्परा में उन्होंने चौथे नम्बर पर 'शठद्वेषिणम्' लिखा है जो शठकोप मुनि थे। महर्षि दयानन्द जी अपने 'सत्यार्थप्रकाश' एकादश समुल्लास में वैष्णव सम्प्रदाय का मूल प्रवर्तक शठकोप को मानते हैं।

वेथर निवासी पं. शिवशङ्कर मिश्र लिखते हैं—

---

३९. सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास।

'चक्रांकित—इस मत का मूल पुरुष कञ्जर जाति का शठकोप नामक एक मनुष्य था। वह सूप बनाकर निर्वाह करता था। ब्राह्मणों के निकट जब वह धर्म-ज्ञान प्राप्त करने गया तब ब्राह्मणों ने उसका तिरस्कार किया था। इसी से उसने स्वतन्त्र पन्थ की स्थापना की थी। इस पन्थ वाले शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपाकर हाथ पर छाप लगाते हैं। ललाट पर त्रिशूल के आकार का तिलक करते हैं। कमलगट्टे की माला पहनते हैं और ईश्वरवाचक दासान्तक नाम रखते हैं।'[४०]

इन्होंने 'शठकोप' को मूल पुरुष माना है।

शाहजहांपुर धर्म-सभा से प्रकाशित 'सनातनधर्म मार्तण्ड'[४१] पृष्ठ १८७ में लिखा है—

'करीबन सात सौ वर्ष हुए कि रामानुज सम्प्रदाय चली। रामानुज सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य षट्कोपतीर्थ, जाति के 'कंजर' थे यह उन्हीं के ग्रन्थों में 'दिव्यसूरि प्रभा दीपिका' के चतुर्थ सर्ग में लिखा है—'विक्रीय शूर्पं विचचार योगी।'

योगी षट्कोपजी सूप बेचकर विचरते हुए, इस वाक्य से उनकी जाति का निश्चय होता है और उनका टोप आज तक उनकी सम्प्रदाय

४०. 'भारत का धार्मिक इतिहास' पृष्ठ ३३५-३३६ [प्रथम संस्करण, श्री रिखवदास वाहिती प्रोप्राइटर : 'दुर्गा प्रेस' और आर० डी० वाहिती एण्ड को०, नं० ४ चोर बगान, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित]

४१. ज्येष्ठ शुक्ल १९३५ वि. में प्रकाशित।

(श्री हिम्मतराय गुप्त अपनी पुस्तक 'विश्व-धर्म-परिचय' प्रथम संस्करण, सहारनपुर, पृष्ठ २१५ में लिखते हैं—'वैष्णवमत—इस मत का उभार शैव मत के विरोध में राजा भोज से लगभग १५० वर्ष पश्चात् षट्कोप नामक कंजराचार्य ने किया था।....')

वाले पूजते हैं। दूसरे आचार्य मुनिवाहन हुए। वह आचार्य जाति के चाण्डाल थे।'....

अतः 'लक्ष्मीनाथ' वैष्णवों ने अपनी महानता प्रदर्शित करने के लिए लिख दी है। वास्तव में शठकोपजी ही मूल प्रवर्तक थे।

श्री निवासाचार्यजी लिखते हैं—

"अस्ति पूर्वं पयोराशेः कापि पश्चिमरोधसि। मण्डले पाण्ड्यभूपस्य नगरी कुरुकाह्वया। तत्रासीत्पादजातेषु कश्चिद् भागवताग्रणीः। श्रीमत्पल्ली हि शूद्रेन्द्रः सीमातीत गुणोल्वणः। तस्य धर्मपरो नाम तनयः समजायत। चक्रपाणिस्ततो जातश्चक्रपाणिपरायणः। अजायत ततस्तस्माद् रत्नमयेति संज्ञितः। सुमति सुषुवे सोऽपि पुत्रं पाटललोचनम् पुत्रं प्रासूत सः कारिं पुत्रं पाटललोचनः। ततो जातः सुत तस्मात्शठकोप इतीरितः। तमाहुः कारिजं सन्तः शठकोपं परांकुशम्। वकुलाभरणाख्यं च तमेव कानिन्दनम्।"

[दिव्यसूरिचरित, चतुर्थ सर्ग]

अर्थात्—'समुद्र के पश्चिम तीर पर पाण्ड्यभूप के राज्य में एक कुरुका नाम की नगरी थी। उसमें पल्ली नाम वाला एक शूद्र था, उसके वंश में कारी का पुत्र शठकोप था। इसी को वकुलाभरण भी कहते हैं। क्योंकि वह इमली के वृक्ष के नीचे वृक्ष का वकुला पहने रहता था।'

पुनः—"विचक्षणो विश्वविमोहहेतोः कुलोचिताचार कुलानुषक्तः। पुण्ये महीसारपुरे विधाय विक्रीय शूर्पं विचचार योगी।"

[दिव्यसूरिचरित, सर्ग २, श्लोक ५२]

अर्थात्—अपने कुलोचिताचार में तत्पर हुआ महीसारपुर के सूप बनाकर और उसे विक्रय कर भक्तिसार विचरता था।

श्री स्वामी देवेन्द्राचार्यजी शास्त्री, विद्यारत्न, अयोध्या अपने 'श्रीसम्प्रदाय' शीर्षक लेख[४२] में लिखते हैं—

---

४२. मासिक पत्र 'सन्त' जयपुर, वर्ष ४ जुलाई + अगस्त सन् १९४३ ई०, अंक १, २, पृष्ठ ५३.

'....वैसे शठकोपादि बेचारे शूद्र होने के कारण अपनी भाषा में वाणी साखी की भांति पद बनाते ।....''

पौराणिक पं. गंगाप्रसाद शास्त्री लिखते हैं—'इसी श्रीसम्प्रदाय में एक स्वा. शठकोपजी हुए हैं । आप जाति के शूद्र थे ।....'[४३]

पं. क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम. ए. लिखते हैं—'नाम्मालबार या मुनिवाहन अस्पृश्य जाति के थे ।'[४४]

पं. बलदेव उपाध्याय एम. ए. साहित्याचार्य, लिखते हैं—

'....सबसे प्रसिद्ध नम्मालबार (शठकोपाचार्य) अद्‌भुत जाति के थे । ....तिरुघन (मुनिवाहन, योगवाहन) जाति के अछूत थे ।....'[४५]

इन उपर्युक्त प्रमाणों के रहते हुए पौराणिक मत का कोई भी लाल महर्षि दयानन्दजी के लेख को झूठा नहीं बता सकता ।

जब वैष्णवों के मूल प्रवर्तक ही नीच थे तब उपर्युक्त प्रमाणों से वैष्णवों के साथ संभाषण व बन्दनादि नहीं करना चाहिए ।

(२४) विधवाओं के लिए काम-शान्ति का विचित्र व गुप्त प्रयोग

संगति-देवरात की पुत्री कला और उसका पति शोण दोनों गंगा-स्नानार्थ गए तो उन्हें कलश में धन मिला । उस समय पति ने स्त्री से उस धन के सम्बन्ध में सम्मति पूछी । पत्नी ने धन की निन्दा की और कहा—

---

४३. 'सनातन धर्म शास्त्रीय अछूतोद्धार निर्णय' पृष्ठ ७७. (संवत् १९८९ वि. में इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भंडार, दरीबा कलां, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

४४. 'भारतवर्ष में जातिभेद' पृष्ठ २०३ (सन् १९४० ई. कलकत्ता संस्करण)

४५. 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ ४७९—४८१ (सन् १९४२ ई. प्रथम संस्करण, वाराणसी)

यदिनारी समक्षं तु द्रविणं दृष्टिमापतेत् ।
वञ्चयीत तथा नारी त्वीदृशैवक्यि सञ्चयैः ॥७॥

प्रायेणार्थवतां नृणां भोगलिप्सा प्रजायते ॥१३॥
६

विश्रम्भाञ्जायते स्त्रीणां नानाविधि विचेष्टता ॥१६॥

यं कञ्चित्पुरुषं दृष्ट्वा युवानं प्रीतिरापतेत् ।
प्रीत्या सञ्जायतेयोगो यौगान्मैथुन सङ्गति ॥१७॥

स मारयित्वा तां द्रव्यं गृहीत्वा पातयिष्यति ।
अथ पूर्वं पातिमृतौ प्रविशेन्नाशुशुक्षणिम् ॥२२॥

वैधव्ये द्रविणं सर्वं धर्मार्थं मे भविष्यति ।
इति निश्चित्य मनसा वैधव्ये समुपस्थिते ॥

योनि कुण्डं समासाद्य दिवा वा यदि वा निशि ।
एकान्तस्थानमभ्येत्य विवृत्य वसनं भगम् ॥२४॥

इदमूचे वचो दुःखा दुपस्थस्थकरासती ।
किं त्वया वै कृतं योने किंवा पापमुपाश्रिता ॥२५॥

शिश्नस्य वाथवा पापं यत्त्वदन्तर वेशनात् ।
यच्च कर्तृं कृतंपापं मादृक्सेवाविवर्जनात् ॥२६॥

अतोऽपि कण्डूसम्भूतौ प्रवेशयेदथाङ्गुलीम् ।
विचित्रचेष्टा कृत्वा तु कण्डूबुद्धरेतः परम् ॥२७॥

मर्दयित्वा कराभ्यां तत्सन्ताड्य च विवत्यतु ।
असकृद्धुन्वती पादौ विवृतास्यातिदुःखिता ॥२८॥

खट्वाकाष्ठमथालिङ्ग्यस्तनपीडं यथाप्रियम् ।
भयो विचित्र चित्तत्वे ततः प्रहृष्ट ताभवत् ॥२९॥

अथवाह्निपुरेस्थित्वा शाकं व्यवहृतं च यत् ।
आलम्ब्य वेश्मनि निशि सन्ध्यायां विशिखासु च ॥३०॥

कृत्वान्यवेषमात्मानं यैः कैरप्युपभुज्यते ।
अथवाच्य प्रभावेन शङ्किता योग्ममाहरेत् ॥३१॥

अज्ञातं च गृहं गत्वा रमये देव निश्चितम् ।
नारी समक्षं लब्धं तु द्रविणेह्यं तदिष्यते ॥

—पद्मपुराण ५ पातालखण्ड, अध्याय ११२

अर्थ—"यदि नारी के सामने धन आ जावे तो वह पुरुष को ठग लेती है । बहुत धन हो जाने से मनुष्यों में भोग की इच्छा उत्पन्न हो जाती है । फिर स्त्रियों में नाना प्रकार की कुटेवें उत्पन्न हो जाती हैं और पुनः जिस किसी पुरुष से प्रेम करने और पुनः मैथुन में लग जाती है । (धन होने पर) पुरुष स्त्री को और स्त्री पति को मार देती है । विधवा होने पर यदि स्त्री अग्नि में प्रवेश न कर जावे तो वह सोचती है कि-धन मेरे काम आवेगा । दिन या रात्रि में यदि योनि में कण्डू (खुजली) उत्पन्न हो तो नग्न होकर एकान्त स्थान में (हाथ से) उसे मर्दन करे ।

दुःख से योनि को देखती हुई-स्पर्श करती हुई-कहती है सोचती है—हे योनि ! क्या तूने पाप किया है और तू पापमुपाश्रिता बन गई है । अथवा विधवा होने से पहले तूने शिश्न (लिंग) के प्रवेश से होने वाले पाप का आश्रय लिया है । जो कुछ कर्त्ता (पति) के द्वारा किया हुआ पाप है उसका भी आश्रय तुझमें है । मुझ जैसी नारियाँ (जो दाम्पत्य बन्धन में हैं) वे सेवा भावना छोड़ दें समय असमय कुसमय में यदि पति की कामुकावस्था का आदेश न मानें तो कर्तृकृत पाप योनिवती नारी को भोगना पड़ता है ।

(स्वभावतः नारी के कामावेश में) योनि में खुजली उत्पन्न हो (उसकी शान्ति के लिए) अंगुली प्रवेश कराया जा सकता है अथवा अन्य

चेष्टाओं द्वारा कण्डू को शान्त कराया जा सकता है। यदि कामावेश से अति दु:खिता हो तो हाथों से सम्मर्दन, विवृत योनि में हलका-हलका संताड़न, पैर धुनना आदि उपाय (शान्ति के लिए) किए जा सकते हैं।

खाट (चारपाई), लकड़ी व लिंग से, स्तनपीड़ा में यथासाध्य यथाप्रिय प्रयत्न किए जा सकते हैं। काम विह्वला नारी हृदय की विचित्र दशा ही नहीं होगी और प्रद्युष्टता (अवस्था) भी हो सकती है।

अथवा धन मदोन्मत्ता नारी विधवा होने पर दिन में (सबके सामने) शाक का व्यवहार (आहार) कर लेती है। और रात्रि में, घर में, सन्ध्या हो या कुछ भी समय हो केशपाश उन्मुक्त कर मनमाने वेष बनाकर जिस किसी कामी के साथ रमण कराती है। निन्दा के भय से शंकित होकर योग्य व्यक्तियों का साहचार्य भी चुपचाप करती है, भोग करती है।

बिना जाने अज्ञात स्थानों में जाकर रमण करती है। यह सब (उक्त सदोष वर्णन) नारी के स्वतन्त्र होकर धन पाने और मनमाने ढंग से आनन्द में व्यय करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।"

समीक्षा—अंगुली से योनि कण्डू दूर करने का प्रयोग वेद व्यासजी ने क्या स्वयं अनुभव करके लिखा था ? इससे तो विधवा विवाह करना अच्छा है। जिन विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता है ऐसी ही कुटेवों में लगकर अपना जीवन नष्ट करती हैं। ऊपर विधवाओं का जो चित्र खींचा गया है वह पौराणिक विधवाओं पर स्पष्ट घटित होता है। यदि बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह कर दिया जाय तो वे पुराण वर्णित पाप से मुक्त हो सकती हैं।

(२५) वेत्रवती माहात्म्य—

सा द्वितीया स्मृता गङ्गा कलौ देवि ! विशेषतः।
ये नराः सुखमिच्छन्ति धनमिच्छन्ति ये नराः ॥२१॥

स्वर्गमिच्छन्ति ये लोकास्ते वै स्नात्वा पुनः पुनः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यान्तिविष्णोः परं पदम् ॥२२॥

—पद्मपुराण ६, उत्तरखण्ड, वेत्रवती माहात्म्य
वर्णनम्, अ० १३३ ।

अर्थ—(महादेवजी कहते हैं) हे देवी ! वह (वेत्रवती नदी) विशेषतः कलियुग में द्वितीया गंगा स्मरण की जाती है । जो मनुष्य लोक में सुख, धन, स्वर्ग की इच्छा करते हैं वे पुनः पुनः स्नान करके इस लोक में सुख भोग कर विष्णु के परमपद को पाते हैं ।

समीक्षा—किसी नदी विशेष में स्नान करने से थकावट दूर हो सकती है परन्तु मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। पुराणकार ने यहाँ गप्प मारा है ।

(२६) चक्राङ्कित-चर्चा—

शंख चक्राङ्कनं कुर्याद्ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ।
हुताग्निनैव सन्तप्यं सर्वं पापापनुत्तये ।
चक्रं वा शङ्खचक्रे वा तथा पञ्चायुधानि वा ॥३०॥
धारयित्वैव विधिवद्ब्रह्मकर्म समारभेत् ।
अग्नि तप्तं पवित्रं च धृत्वा वै भुजमूलयोः ॥३१॥
त्यक्त्वा यमपुरं घोरं याति विष्णोः परं पदम् ।
चक्र चिह्न विहीनस्तु यः पूजयति केशवम् ॥३२॥
तत्सर्वंविफलं याति पूजामन्त्र अपादिकम् ।
अग्नितप्तेन चक्रेण ब्राह्मणोबाहुमूलयोः ॥३३॥
ऊर्ध्वं पुण्ड्रविहीनस्तु शङ्खचक्रविवर्जितः ।
तं गर्दभे समारोप्य वहिः कुर्यात्स्वपत्तनात् ॥४४॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, उमामहेश्वरसंवादे सुदर्शनादि
माहात्म्यम्, अ० २२४ ।

अर्थ—"शंख और चक्र से ब्राह्मण अपने बाहू दगवावे। इससे उसके सब पाप शुद्ध हो जाते हैं। चक्र या शङ्खचक्र या पाँचों शस्त्रों का चिह्न दगवा कर धारण करके वह ब्रह्म कर्म करे। अग्नि से तपाए चिह्न को धारण करके नर यमपुर को त्याग विष्णुपुर को जाता है। बिना चिह्न केशव (कृष्ण) को जो पूजता है उसका सब किया पूजा, मन्त्र, व जपादि व्यर्थ जाता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीन और शंख चक्र से रहित को गदहे पर चढ़वा कर नगर से बाहर कर दे।

समीक्षा—महर्षि दयानन्दजी सरस्वती वैष्णव मत की आलोचना करते हुए लिखते हैं—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतव ॥१॥
अतप्त तनूर्न तदामो अश्नुते। इति श्रुतेः॥

—रामानुज पटल पद्धति

अर्थात्—(तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्ध युक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिए! प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे-ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि बिना शंख चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है। और जैसे राज्य के चपरास आदि चिह्नों के होने से राज-पुरुष जान उससे सब लोग डरते हैं वैसे ही विष्णु के शंख चक्रादि आयुधों के चिह्न देखकर यमराज और उनके गण डरते हैं।........

जैसे वाममार्गी पाँच मकार मानते हैं वैसे चक्राङ्कित पांच संस्कार

मानते हैं और अपने शंख चक्र से दाग देने के लिए जो वेदमन्त्र का प्रमाण रक्खा है, उसका इस प्रकार का पाठ और अर्थ है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषिविश्वतः ।
अतप्रतनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥
तपोष्पवित्रंविततंदिवस्पदे ॥२॥

—ऋ० मं० ९ । सू० ८३ । मन्त्र १, २

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करने वाले प्रभु सर्व सामर्थ्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ! आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है । उस आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उसको ब्रह्मचर्य सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्य्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरणयुक्त है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं वे ही इस तप का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्ध स्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥१॥ जो प्रकाश स्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरणस्वरूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं ॥२॥

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मंत्र से 'चक्रांकित' होना सिद्ध क्यों कर करते हैं ? भला कहिए वे विद्वान् थे वा अविद्वान् ? जो कहो कि विद्वान् थे तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते ? क्योंकि इस मन्त्र में 'अतप्ततनूः' शब्द है किन्तु 'अतप्तभुजैकदेशः' नहीं । पुनः 'अतप्ततनूः' यह नखशिखा पर्यन्त समुदाय अर्थ है । इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्राङ्कित लोग स्वीकार करें तो अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र में सत्य भाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है ।"[४६]

---

४६. "सत्यार्थप्रकाश" एकादश समुल्लास ।

पौराणिक पं. रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पं. गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

१. "मन्त्रों के स्वामी सोम, तुम्हारा शोधक अङ्ग (वा तेज) सर्वत्र विस्तृत हुआ है। तुम्हारा जो पान करता है। उसके सारे अंगों में प्रभु होकर, तुम विस्तृत हो जाते हो। व्रत आदि से जिसका शरीर तपाया हुआ और परिपक्व नहीं है। वह तुम्हारे सर्वत्र विस्तृत शोधक अङ्ग को नहीं ग्रहण वा धारण कर सकता। जिनका शरीर परिपक्व है और जो यज्ञ-कर्त्ता हैं, वही तुम्हारे शोधक अंग को धारण कर सकते हैं।"

२. "शत्रु तापक सोम का शोधक अंग (वा तेज) द्युलोक के उन्नत स्थान में विस्तृत है।"......[४७]

पौराणिक टीकाकार भी वैष्णवों के चक्राङ्कित परक अर्थ नहीं करते हैं। वैष्णवों के सम्बन्ध में पीछे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

(२७) त्रिदेवों को शाप—

संगति—एक बार सह्य पर्वत की चोटी पर समस्त देवताओं ने मिलकर बड़ा भारी यज्ञ रचा, जब मुहूर्त का समय आया तो ब्रह्माजी की ज्येष्ठ पत्नी 'स्वरा' तब तक यज्ञशाला में न आ सकी। विष्णु के प्रस्ताव और शिव आदि देवताओं के अनुमोदन करने पर मुहूर्त टल जाने के भय से ब्रह्मा के दक्षिण भाग में गायत्री नामक दूसरी धर्मपत्नी को बिठलाकर यज्ञ दीक्षा आरम्भ की गई। इतने में स्वरा भी आ गई और गायत्री को पत्नी के आसन पर बैठी देखकर कुपित हो कहने लगी कि—

---

४७. "ऋग्वेद संहिता [सरल-हिन्दी-टीका-सहित] सप्तम अष्टक, पृष्ठ ६८ [फाल्गुन १९९२ वि. वैदिक पुस्तक माला, सुलतानगंज से प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

ममाऽऽसने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता ।
तस्मात्सर्वे जडीभूता नानारूपा भविष्यथ ॥१५॥

ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिता तदा ।
समुत्थायाऽस्पद्दे वैर्वार्यमाणाऽपि तां स्वराम् ॥१७॥

तव भर्ता यथा ब्रह्मासमाप्येव तथा खलु ।
वृथाऽशपस्त्वं यस्मान्मां भवत्वमपि निम्नगा ॥१८॥

ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः सुरा ।
प्रणम्यदण्डवद् भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन् ॥१९॥

तदा लोकत्रयं ह्येत द्विनाशं यास्यति ध्रुवम् ।
अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिर्त्यताम् ॥२१॥

इति तद्वचनं श्रुवा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ॥
जडी भूताभवन्नद्यः स्वांशैररवे तदानृप ! ॥२५॥

तत्र विष्णुरभूत्कृष्णावेण्या देवो महेश्वरः ।
ब्रह्मा ककुद्मती गङ्गा पृथगेवाभवत्तदा ॥२६॥

देवाः स्वानपि तानंशाञ्जडीकृत्य विचिक्षिपुः ।
सह्याद्रि शिखरेभ्यस्ताः पृथगासन्सुनिम्नगाः ॥२७॥

गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा ॥२९॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, कार्त्तिक माहात्म्ये श्रीकृष्ण सत्यभामा संवादे कृष्णावेण्यामाहात्म्य वर्णनम्, अ. १११

अर्थ—"[स्वरा ने कहा] हे देवताओ ! क्योंकि तुम लोगों ने मेरे आसन पर इस छोटी सौतिन गायत्री को बिठलाया है इसलिए तुम सब जड़ और नाना रूप वाले हो जाओ ॥१५॥ इस तरह स्वरा के शाप को सुनकर क्रोध से कम्पित हुई गायत्री उठी और देवताओं के रोकने पर भी स्वरा को शाप देने लगी ॥१७॥ बोली-ब्रह्माजी जैसे तुम्हारे पति हैं वैसे

ही हमारे भी स्वामी हैं तुमने वृथा शाप दिया इससे तुम भी नदी हो ॥१८॥ तब शिव विष्णु आदि देवताओं ने हाहाकार करते हुए पृथ्वी पर दण्डवत् पड़कर स्वरा को प्रणाम किया और कहा कि (सब देवताओं के जड़ हो जाने पर) यह सब चराचर तीनों लोक निश्चय ही विनष्ट हो जायेंगे तुमने शाप देते हुए कुछ भी विचार नहीं किया इसलिए अपने शाप वापस करो ॥२१॥ स्वरा के ऐसे वचन को सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव अपने-अपने अंशों से जड़ीभूत बनकर बहने लगे ॥२५॥ विष्णु कृष्णा नाम की नदी बने, महेश्वर वेणी और ब्रह्माजी ककुद्मिनी गङ्गा के रूप में पृथक्-पृथक् बहने लगे ॥२६॥ इसी प्रकार अन्यान्य देवता भी अपने अंशों से जड़ीभूत होकर सह्य पर्वत के शिखरों से नदी रूप में बहने लगे ॥२७॥ गायत्री और स्वरा दोनों पश्चिमवाहिनी बनकर अवतीर्ण हुईं ॥२८॥"

पं. माधवाचार्य शास्त्री की कल्पना—

"देवा यज्ञमतन्वत"—[यजु: ३१]

अर्थात्—देवताओं ने यज्ञ रचा।

सृष्टि की रचना ही समस्त देवताओं का सम्मिलित यज्ञ है (जिसका विस्तृत वर्णन यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में अङ्कित है) जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश अर्थात्-रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण ये तीनों गुण ही स्वसमवेत शक्तियों सहित उक्त सृष्टि यज्ञ के मुख्य सम्पादक हैं........।'[४८]

पं. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य—'इस कथा में सृष्टि की रचना का निर्देश करना व्यासजी को अभीष्ट था। इसलिए विष्णु और शिव का विशेष वर्णन छोड़कर ब्रह्मा और उनकी दोनों पत्नियों को ही नाटक का पात्र चुना।'....[४९]

---

४८. "पुराण-दिग्दर्शन" पृष्ठ ४२३-४२४.

४९. 'पुराण तत्त्व मीमांसा' पृष्ठ ५५७

समीक्षा—ब्रह्मा की भार्या स्वरा ने समस्त देवताओं को 'जड़' हो जाने का शाप दिया जिसके परिणामस्वरूप त्रिदेव को नदी बनना पड़ा। इससे त्रिदेवों की असमर्थता प्रकट होती है। पौराणिक तीनों को ईश्वर समझते हैं। जो स्वयं असमर्थ हैं वह भक्तों का कल्याण क्या कर सकते हैं?

श्री माधवाचार्य शास्त्री यजु. ३१।१४ का प्रमाण देकर त्रिदेवों की असमर्थता को छिपाने की कुचेष्टा करते हैं। इस वेदमंत्र से यहाँ पौराणिक त्रिदेवों की कोई चर्चा नहीं है। यह तो शास्त्रीजी की कपोल-कल्पना है।

यजु० ३१।१४ का वास्तविक अर्थ—'हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेणा) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं। (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) पूर्वाह्न काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्मः) मध्याह्न काल (इध्मः) ईन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है। ऐसा जानो।'[५०]

यहाँ त्रिदेवों से कोई तात्पर्य ही नहीं है।

(२८) दानवों से डर कर त्रिदेवों का वृक्षों में प्रवेश—

अश्वत्थरूपी भगवान्विष्णुरेव न संशय।
रूद्ररूपीवट स्त्वद्वत्पालाशो ब्रह्मरूपधृत् ॥२२॥

—[पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, कार्त्तिक माहात्म्येऽश्वत्थवट प्रशंसा, अध्याय ११५]

अर्थ—पीपल का पेड़ साक्षात् विष्णु है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वट वृक्ष रुद्र है और पालाश ब्रह्मा का रूप है।

पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निर्जिताः सुराः।
वृक्षेषु विविशुस्तत्रसूक्ष्माः प्राणपरीप्सया ॥२॥

---

५०. महर्षि दयानन्दजी सरस्वती कृत 'यजुर्वेद भाष्यम्' पृष्ठ ७४३ [संवत् १९४६ वि. में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर द्वारा प्रकाशित]

तत्र विल्वे स्थितः शम्भुरश्वत्थे · हरिरव्ययः ।
शिरीषेऽभूत्सहस्राक्षो निम्बेदेवः प्रभाकरः ॥३॥
—[पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, निम्बार्कदेवतीर्थ, अ. १५८]

अर्थ—पूर्व समय में कोलाहल युद्ध के समय दानवों ने समस्त देवताओं को जीत लिया, तब वे देवता प्राण बचाने की इच्छा से सूक्ष्म रूप से वृक्षों में छिप गए ॥ २ ॥ वहाँ शम्भु विल्व (वेल में), विष्णु अश्वत्थ (पीपल) में, सहस्राक्ष (इन्द्र) सिरस और सूर्य नीम के वृक्ष में स्थित हुए ॥ ३ ॥

पं. माधवाचार्य शास्त्री की कल्पना—

(क) अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
—[यजु. १२।७९]

हे देवताओ ! पीपल वृक्ष में आपका निवास है। आप सबने उसके पत्रों में स्थान बना रक्खा है।

(ख) अश्वत्थो देवसदनः । —अथर्व. ६।९५।१

अश्वत्थ—पीपल में सब देवताओं का आवास है।

समस्त देवताओं का वृक्षों में-खास कर पीपल के पेड़ में निवास बताया है वह कम रहस्य से परिपूर्ण नहीं है ! ....

पीपल में सब देवताओं का निवास है अर्थात्............वह जीवों की सर्वांगीण स्वस्थता का हेतु है—यही गूढ़ भाव प्रकट करने के लिए यहाँ यह रूपक बाँधा है। सो बीमारी के कीटाणु रूप असुरों से जान बचाकर देवतारूप स्वास्थ्यवर्द्धक समस्त, दिव्य गुण उपर्युक्त वृक्षों में समाए हुए हैं। यही इस आख्यान का आशय है।....[५१]

पं. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य, एम. ए. ने श्रीमाधवाचार्य शास्त्री के लेख की नकल की है।[५२]

---

५१. 'पुराण दिग्दर्शन' पृष्ठ ५३३-५३४
५२. 'पुराण तत्त्व मीमांसा' पृष्ठ ५३७-६४०

समीक्षा—दानवों के भय से त्रिदेव व इन्द्र का वृक्षों में छिप जाना उनकी असमर्थता प्रकट करता है।

त्रिदेव व इन्द्र की असमर्थता को छिपाने के लिए पौराणिकों ने वेद-मंत्रों का आश्रय लिया है। वेदों में 'अश्वत्थ' शब्द देखते ही पौराणिक देवों की असमर्थता का समाधान इनको ज्ञात होने लगा जो कि कल्पनामात्र ही है।

वेदमंत्रों के वास्तविक तात्पर्यः—

यजु. १२।७९ [यही मंत्र यजु. ३५।४ में भी है]

महर्षि दयानन्द सरस्वती—"हे मनुष्यो! ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे, ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है; और (वः) तुम्हरा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया हैं, इससे (गोभानः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पुरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण देह को (सनवथ) ओषधी देकर सेवन करो, और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो।"

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिए कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है, इससे शरीर को रोगों से बचा कर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और तृण फल फूल पत्ते स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं, वैसे ही रोगरहित शरीर शोभायमान होते हैं।[५३]

---

५३. यजुवेद भाष्यम् द्वितीयोभागः पृष्ठ २६३-२६४ [सन् १९७१ ई. में श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट, बहाल गढ़ सोनीपत-हरियाणा, द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

यद्यपि 'आश्वत्थ' का अर्थ पीपल होता है परन्तु महर्षि दयानन्दजी महाराज ने "श्व:स्थाता न स्थातावा वर्त्तते तादृशे देहे—कल रहे वा न रहे, ऐसे शरीर में" अर्थ किया है।

पीपल के वृक्ष, शाखा, पत्र में रोगों का नाश करने की शक्ति है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसमें देवता निवास करते हैं। यह कल्पना नहीं तो क्या है?

अत: श्री माधवाचार्य का अर्थ अशुद्ध है।

अथर्व. काण्ड ६, सू. ९५ मं. १ का वास्तविक अर्थ:—

पं. क्षेमकरणदासजी 'त्रिवेदी'—'(देवसदन:) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थ:) वीरों के ठहरने का देश [अधिकार] (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और माध्यम अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) गति में (इत:) प्राप्त होता है।"....*

पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ—(अश्वस्थ:) अश्व अर्थात् इन्द्रियरूपी घोड़े जहाँ स्थित रहते हैं, (देवसदन:) तथा जो देवों अर्थात् इन्द्रियों का गृह भूत है वह मस्तिष्क (तृतीयास्यां दिवि) इस शरीर के तृतीय लोक अर्थात् मूर्धास्थान में है।"....५४

यही मंत्र अथर्व. १९।३९।६ में तथा अथर्व. ५।४।३ में भी है। अथर्व. ५।४।३ का भी वही अर्थ शर्माजी ने किया है जैसे अथर्व. ६।९५।१ का किया है।

अत: त्रिदेवों के वृक्षों में छिपने के प्रसंग की कोई भी चर्चा यजुर्वेद व अथर्ववेद में नहीं है।

---

* अथर्ववेदभाष्यम्, षष्ठं काण्डम् प्रथमावृत्तौ, पृष्ठ १४०२

५४. "अथर्ववेद संहिता भाषा-भाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ५३३.

(२९) श्राद्ध की कल्पना

"नाम गोत्रं पितृणांतुप्रापकंह व्यकव्ययोः।
श्राद्धस्यमन्त्र तस्तत्त्व मुपलभ्येत भक्तितः।
अग्निस्वात्तादयास्तेषा माधिपत्ये व्यवस्थिताः॥

नामगोत्रास्त दादेशाभवंत्युद्भवतामपि।
प्राणिनः पीणयत्येत दर्हणं समुपागतम्॥४०॥

दिव्योयदिपितामातागुरुः कर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतंभूत्वादिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति ॥
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे पितृणां भवेत्।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति॥४२॥

पानं भवति यक्षत्वेराक्षसत्वेतथामिषम्।
दानवत्वेतथापानं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्॥४३॥

मनुष्यत्वेन्नपानादि नानाभोगवतां भवेत्।
रति शक्तिस्त्रियः कान्तेऽन्येषां भोजनशक्तिता॥४४॥"

[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे, पितृमाहात्म्य कथनम् अध्याय १०]

अर्थ—"पितरों के नाम गोत्र ही पितरों के नाम से दिये हव्य कव्य को उन तक पहुँचा देते हैं। श्राद्ध का वास्तविक सत्य भक्ति से उपलब्ध होता है। पितरों के अधिपति अग्निष्वात्तादि हैं। नाना गोत्र तथा देश, ये प्राणियों के होते ही रहते हैं इन्हीं द्वारा किया श्राद्ध प्राणियों को तृप्त करता है। यदि पिता-माता देवयोनि में हैं तब उनके नाम पर दिया अन्न अमृत बन कर जाता है। दैत्य योनि में हो तो भोगरूप से, पशु योनि में हो तृणरूप से, श्राद्ध में दिया हुआ अन्न ही वायु रूप बनकर राक्षस योनि में हो तो मांस बनकर, दानव योनि में हो तो मदिरा बनकर, प्रेत हो तो रुधिर बनकर, मनुष्य ही हो तो अन्नजल रूप बनकर स्त्रियें हों तो रति शक्ति बनकर पितरों को तृप्त करता है।"

समीक्षा—यह तो पुराण की कल्पना मात्र ही है। मृतक श्राद्ध वेद-विरुद्ध है। वेदों में इसकी चर्चा तक नहीं है।

यहाँ जो कल्पना की गई है उससे पूर्वोक्त कल्पना भी स्वत: खण्डित हो जाती है और पितरों के नानायोनि में होते हुए अपने देह का त्याग करके भोग लगाते हुए ब्राह्मणों के समीप अपना भाग लेने के लिए आना ये सर्वथा असम्भव है फिर एक शंका साथ ही यह भी उत्पन्न होती है कि क्या पुत्रादि के दिए पिण्ड और ब्राह्मणभोज से हुई तृप्ति पितरों को प्रतीत भी होती है कि ये हमारे पुत्रों की दी हुई है।

(३०) गणेशजी की विचित्र उत्पत्ति

"कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्यशैलजा।
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलेनापूरितां तनुम् ॥४४५॥
तदुद्वर्त्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम्।
पुरुषंक्रीडतीदेवी तच्चाप्यक्षिपदम्भसि ॥४४६॥"

(पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे गौरी विवाहवर्णनम् अध्याय ४५)

अर्थ—"पार्वती उबटन कर रही थी कि उस समय शरीर की मैल बहुत उतरी उसने उसी से एक हाथी के सिर वाला मनुष्य तैय्यार किया और उसे पानी में डाल दिया।"

समीक्षा—क्या गणेशजी की उतरी पार्वती के शरीर के मैल से संभव है? यह तो सृष्टिक्रम विरुद्ध तथा अवैज्ञानिक होने से गप्प है। भिन्न-भिन्न पुराणों में गणेशोत्पत्ति' भिन्न-भिन्न प्रकार की है।

(३१) दण्डकारण्य के महर्षियों का राम के साथ मैथुन—

"पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम् ॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूतास्तु गोकुले।
हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् ॥१६५॥"

(पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, उमामहेश्वर श्रीकृष्णचरिते कंसवध, अध्याय २४५)

अर्थ—"पहिले सारे महर्षियों ने जो दण्डकारण्य में निवास करते थे विष्णु के अवतार श्री राम को देखकर (मोहित हो) उनसे भोग करने की इच्छा की। वे सब ऋषि स्त्री होकर गोकुल में जन्मे और काम से (कृष्णरूप में) भगवान् विष्णु को प्राप्त कर संसार-सागर पार हुए।"

समीक्षा—पुराणकार ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी पर ऋषियों द्वारा संभोग करने का लांछन लगाया है।

बाइबिल (उत्पत्ति पं. १९ आ. १ से १२ तक) में सदोमनगर के वृद्ध और जवानों का देवदूतों से संभोग का वर्णन आया है।

उसी प्रकार पुराणकर्त्ता ने यहाँ वर्णन किया है।

ऋषियों पर पुरुष-मैथुन (Sodomy—इगलामबाजी) का दोषारोपण किया है।

(३२) शिवदूती को अण्डकोष भक्षण करने का आदेश

शिवजी ने कुमार के चूडाकर्म में देवलोक के देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, नाग, गज प्रभृति को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया और सबको स्वेच्छान्न भोजन देकर तृप्त किया। भोजन समाप्त होने पर 'शिवदूती' आयी। उसके भोजन माँगने पर शिवजी ने कहा—

आस्वादितं न चान्येन भक्ष्यार्थे च ददाम्यहम्।
अधोभागे च मे नाभेर्वर्तुलौफलसन्निभौ ॥१२५॥

भक्षयध्वं हि सहितालम्बौ मे वृषणाविमौ।
अनेन चापि भोज्येन परा तृप्तिर्भविष्यति ॥१२६॥

—पद्मपुराण, सृष्टिखण्डे, अध्याय ३१

अर्थ—"दूसरों ने जिसका स्वाद नहीं लिया है, भोजन के लिए मैं देता हूँ। मेरी नाभि के नीचे दो गोल फल के समान आलम्ब (उपस्थेन्द्रिय) सहित दो अण्डकोष हैं, उनका भक्षण करो। इस भोज्य पदार्थ से पूर्ण तृप्ति हो जायेगी।"

समीक्षा—यह नरमांस भक्षण की शिक्षा अत्यन्त घृणित है।

हैदराबाद शास्त्रार्थ में पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री, सांख्यतीर्थ और डीडवाना शास्त्रार्थ में पं० बुद्धदेवजी विद्यालङ्कार द्वारा उपर्युक्त प्रमाण देने पर 'शिवदूती' का यौगिक अर्थ 'मृत्यु' करके अपना पिण्ड छुड़ाया था।

वेदों में जहाँ यौगिक अर्थ होना चाहिए वहाँ पौराणिकों ने रूढ़ि अर्थ करते हैं और पुराणों में रूढ़ि अर्थ होना चाहिए वहाँ पर यौगिक अर्थ करते हैं। यह इनकी पण्डिताई का एक नमूना है।※

(३३) पुरुष-मैथुन के कुछ विचित्र वर्णन

श्रीकृष्णजी का अर्जुन से सम्भोग

"समालोक्यार्जुनीयाऽसौ मदनावेशविह्वला।
ततस्तां च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित् ॥१९१॥

तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्वक्रीडावनान्तरे।
यथाकामं रहो रेमे महायोगेश्वरो विभुः॥

ततस्तस्याः स्कन्धदेशे प्रदत्तभुज पल्लवः।
आगत्य शारदां प्राह पश्चिमेऽस्मिन्सरोवरे॥

शीघ्रं स्नापय तन्वङ्गी क्रीडाश्रान्तां मृदु स्मिताम्।
ततस्तां शारदादेवीतस्मिन्क्रीडासरोवरे ॥१९४॥

स्नानं कुर्वित्युवाचैनां सा च श्रान्ता तथाऽकरोत्।
जलाभ्यन्तरमाप्ताऽसौ पुनरर्जुनतां गतः॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्डेऽर्जुन्यनुनयो, अ० ७४

※ महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २६३ में 'शिव' को 'मनुष्याकारधारी' लिखा है। अतः यौगिक अर्थ व्यर्थ है।

—लेखक

अर्थ—"यह सब देखकर वह जो अर्जुनीया थी वह काम से व्याकुल हो गई। तदनन्तर सब कुछ जानने वाले श्री कृष्णजी ने उसके हाथ को पकड़ कर उस सार्वजनिक उद्यान में इच्छानुसार उसके साथ एकान्त में रमण (सम्भोग) किया तब उस (अर्जुनीया) के कन्धे पर अपनी कोमल भुजा को रखे-रखे ही उसी सुन्दर सरोवर के पश्चिमी किनारे पर आकर शारदा से बोले—हे शारदा देवी! शीघ्र इस सुन्दरी को स्नान कराओ क्योंकि कामक्रीड़ा में यह बहुत थक गई है। तदनन्तर शारदादेवीजी ने अर्जुनी से कहा कि इस सुन्दर सरोवर में शीघ्र स्नान कर लो। अर्जुनी ने वैसा ही किया। स्नान करके वह फिर अर्जुन बन गए।"

(३४) श्रीकृष्ण का नारद ऋषि को नारदी बनाकर संभोग

"ताभिः सह गातास्तत्र यत्र कृष्णः सनातनः।
केवलं सच्चिदानन्दः स्वयं योषिन्मयः प्रभुः ॥४०॥
योषिवानन्दहृदयो दृष्ट्वा मां प्राब्रवीन्मुहुः।
समागच्छ प्रिये! कान्ते! भत्तया मां परिरम्भय ॥४१॥
रेमे वर्ष प्रमाणेन तत्र चैव द्विजोत्तम! ॥४२॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्डे, अध्याय ७५

अर्थ—"उन स्त्रियों के साथ वे वहाँ पर गईं जहाँ पर सनातन कृष्ण थे जो सच्चिदानन्द और स्वयं स्त्रीमय हैं। नारद स्वयं कहते हैं कि उन्होंने मुझे देखकर कहा कि हे प्रिये! आ और मुझे आलिङ्गन कर। हे द्विजोत्तम! वर्ष भर तक वहाँ मेरे साथ उन्होंने रमण (मैथुन) किया।"

(३५) श्री कृष्णजी पर परस्त्री से संभोग करने का कलंक

यशोदाजी राधा को रोटी बनवाने के लिए अपने घर बुलाती थीं। खाने-पीने के पश्चात् राधा व कृष्ण लोगों की आँख बचाकर व्रज में जा पहुँचते थे और वहाँ मद्यपान करके सनातन धर्म किया करते थे—

"उपविश्यासने दिव्ये मधुपानं प्रचक्रतुः।
ततो मधुमदोन्मत्तौ निद्रया मीलितेक्षणौ मिथः

पाणी समालम्ब्य कामवाणवशं गतौ ।
रिरंसू विशतः कुञ्जं स्खलद्वाङ्मनसौ पथि ॥५५॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्डे, श्री वृन्दावनमाहात्म्य, अध्याय ८३

अर्थ—"बड़े सुन्दर आसन पर बैठकर उन दोनों ने शराब पी तब नशा चढ़ गया, निद्रा के कारण उनकी आँखें आधी वन्द हो गईं। एक दूसरे की बाहों में बाहें डालकर तथा कामातुर होकर वे दोनों परस्पर सम्भोग की इच्छा से एकान्त कुंज में प्रवेश किए। उस समय उनकी वाणी और मन मार्ग में लड़खड़ा रहे थे।"

यहाँ कृष्णजी पर मद्यपान और परस्त्रीगमन दो दोषारोपण किए गए हैं।

(३६) शिवजी पर परस्त्रीगमन का दोषारोपण

"पुरा शर्व, स्त्रियौ दृष्ट्वा युवतीरूपशालिनीः ।
गन्धर्वकिन्नराणां च मनुष्याणां च सर्वतः ॥

मन्त्रेण ता समाकृष्य स्वतिदूरे विहायसि ।
तपो व्याजपरो देवस्तासु सङ्गतमानसः ॥

अतिरम्यां कुटीं कृत्वा ताभिः सह महेश्वरः ।
क्रीडां चकार सहसा मनोभव पराभव ॥३॥

एतस्मिन्नन्तरे गौर्याश्चित्तमुद्भ्रान्ततां गतम् ।
अपश्यद्ध्यान योगेन क्रीडन्तं जगदीश्वरम् ॥

स्त्रीभिरन्तर्गतं ज्ञात्वा रोषस्य वशगाऽभवत् ।
ततः क्षेमङ्करीरूपा भूत्वा च प्रविवेशसा ॥

व्योमैकान्तेऽतिदूरे च कामदेव समप्रभम् ।
वामातिमध्यमं शुभ्रं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ॥६॥

स्त्रीभिः सह समालिङ्‌ग्य प्रक्रीडन्तं मुहुर्मुहुः ।
चुम्बन्तं निर्भरं देवं हरं रागप्रपीडितम् ॥७॥

वृत्तं क्षेमङ्करी दृष्ट्वा निपपाताग्रतस्तदा ।
तासां केशेषु चाकृष्य चकार चरणाहतिम् ॥

त्रपयापीडितश्शर्वः पराङ्‌मुखमव स्थितः ।
केशेष्वाकृष्य रोषान्ताः पातयामास भूतले ॥

स्त्रियः सर्वाधरां प्राप्य सहसा विकृताननाः ।
उमाशाप प्रदग्धाङ्गा म्लेच्छानां वशमागतः ॥१०॥

ताश्चाण्डालस्त्रियः ख्याता अधवाधव संमुताः ।
अद्याप्युमाकृतंशापंसर्वास्ताश्चसमश्नुयु ॥११॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्डे, पञ्चाख्यानम्, अ० ५८

अर्थ—पूर्वकाल में शिवजी गन्धर्व, किन्नर मनुष्यों की युवती रूपवती स्त्रियों को देखकर मन्त्र से उन्हें आकर्षित कर आकाश में वहुत दूर पर तप के बहाने से उनसे संभोग करने का विचार किया। महेश्वर, काम से पीड़ित होकर, अत्यन्त सुन्दरी कुटी बनाकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥३॥ इसी समय में गौरी का चित्त उद्‌भ्रांत हुआ और ध्यानयोग से स्त्रियों के साथ विहार करते हुए जगदीश्वर को देखकर वहुत क्रुद्ध हुई तब क्षेमंकर रूप धारण करके उस कुटी में प्रवेश किया। आकाश में बहुत दूर पर कामदेव के समान सुन्दर स्त्रियों का आलिङ्गन करके विहार करते हुए और राग से युक्त होकर चुम्बन करते हुए कामदेव के समान, कान्ति रखने वाले पुरुषोत्तम शिव को देखकर गौरी उनके आगे जा पड़ी। उन स्त्रियों का केश पकड़कर उन्हें लात मारी। शिव ने लज्जा के मारे मुँह फेर लिया। उनका केश पकड़कर भूतल पर पटक दिया। सब स्त्रियाँ भूतल पर गिरकर विकृत मुखमण्डल बन गईं। उमा के शाप से दग्ध होकर वे सब मलेच्छों के वश हो गईं। वे सब चाण्डाल की स्त्री के नाम से ख्यात हुईं। आज तक उमा के शाप को सब स्त्रियाँ भोग रही हैं।"

समीक्षा—जिस शंकर को पौराणिक ईश्वरावतार मानते हैं उनकी यह लीला है !! शंकर का काम वेदविरुद्ध होने से निन्दनीय है।

(३७) भगवान् विष्णुजी का वृन्दा के साथ मुँह काला करना

संगति—जालन्धर समुद्र का पुत्र था। वह बड़ा ही बलवान् हुआ। ब्रह्मादि सब देव उससे पराजित हो गए। नारद के मुख से पार्वती का सौन्दर्य सुनकर वह उस पर आसक्त हो गया और शिव का रूप धारण कर पार्वती के पास गया और पार्वती से रति-क्रीड़ा की इच्छा की। यह सुन पार्वती वहाँ से उठकर चली गई और अपनी जया नामक एक सखी से कहा कि तू मेरा रूप धारण कर उसके पास जा और ज्ञात कर कि वे शंभु हैं या कोई असुर है। जब वह तुझे आलिङ्गन करें और चुम्बन ले तब जानना कि वह शिव नहीं है। उसने ऐसा ही किया। जालन्धर ने उसे आलिङ्गन किया। वह वहाँ से गौरी के पास गई और सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर गौरी भय के मारे कमल में प्रवेश कर गईं। इसी बीच में उस विष्णु द्वारा वृन्दा के हरे जाने का समाचार मिला। दुर्वारण से परामर्श करके पहले शिव को मारने का विचार किया पश्चात् विष्णु को। शिव के साथ युद्ध करने लगा। शिव ने उसे बाणों से मूर्छित कर दिया और उसकी सेना को मार डाला। जब मूर्छा भंग हुई तो उसने अपने गुरु शुक्राचार्य का स्मरण किया। वे आए और उनकी प्रार्थना से सब दैत्यों को जीवित कर दिया तब शिव ने उन्हें मारने के लिए त्रिशूल उठाया तब शुक्राचार्य ने कहा कि मुझे मारेंगे तो ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। यह सुनकर वे डर गए और एक कृत्या उत्पन्न कर उससे कहा कि शुक्राचार्य को अपनी योनि में डाल ले। जब जालन्धर मारा जाय तब निकालना। उसने वैसा ही किया। अब फिर शिव से युद्ध होने लगा। जालन्धर ने मायामयी जया को बनाकर उससे कहा कि तू रुद्र के पास जाकर उन्हें मोहित कर ले। वह उनके पास जाकर बोली कि पार्वती को जालन्धर उठा ले गया है। उधर जालन्धर के रथ पर बैठी और रोती हुई पार्वती को शंकर ने देखा और उसको छीनने

के लिए आगे बढ़े। ज्योंही शिवजी उसे पकड़ने चले त्योंही शम्भु पार्वती को लेकर आकाश में उड़ गया। उसको मारने के लिए शिव ने त्रिशूल चलाया जिससे पार्वती मर गई। माया रूपिणी गौरी को मरा देखकर शिव विलाप करने लगे और मूर्छित हो गए तब ब्रह्मा ने आकर कहा कि यह तुम्हारी जया नहीं किन्तु माया की गौरी है तब शिव को ज्ञात हुआ और पुनः युद्ध करने लगे। इधर विष्णु जालन्धर का रूप धारण कर उसकी पत्नी के पास गए उससे व्यभिचार किया।

उसकी स्त्री वृन्दा ने विष्णु की भर्त्सना करते हुए कहा—

"पतिर्धर्मस्य यो नित्यं परदाररतः कथम्।
ईश्वरोऽपि कृतं भुङ्क्ते कर्मेत्याहुर्मनीषिणः॥५३॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने,
वृन्दाया ब्रह्मपद प्राप्तिर्नाम अध्याय, १६

अर्थ—"(वृन्दा ने कहा) जो धर्म का पति हो वह सदा पराई स्त्री में रत कैसे हो सकता है? ईश्वर (ब्रह्मा रुद्रादिक) भी कृत कर्म को भोगते हैं ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं।

यह सारा प्रसंग, पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड अध्याय ३ से १९ तक में है।

समीक्षा—क्या शंकरजी में इतनी शक्ति न थी कि वे जालंधर को मार सकें? मायारूपी गौरी को भी वे न पहचान सके। विष्णु भी शक्ति-हीन थे। क्या इतनी भी शक्ति न थी कि वे जालन्धर को मारते कि उन्होंने छलकपट करके उसकी भार्या का सतीत्व भंग किया? यह कार्य तो किसी लम्पट का है सज्जन पुरुष का नहीं है।

संख्या ३६ में शंकरजी का गन्धर्व व किन्नरों की स्त्रियों से और विष्णुजी का वृन्दा के साथ संभोग करना वेद विरुद्ध है—

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामि देकाभम्यंहूरोगात्"

—ऋ. १०।५।६ तथा अथर्व. ५।१।६

अर्थ—"(कवय:) क्रान्तदर्शी ऋषियों ने (सप्त) सात (मर्यादा:) मर्यादाएँ, पाप से बचने की व्यवस्थाएँ (ततक्षु:) बनाई हैं। (तासाम्) उन में से (एकाम्) एक को (इद) भी (अभ्यंगात्) जो उल्लंघन करता है वह (अंहुर:) पापी होता है।...."

इस मन्त्र की व्याख्या श्रीयास्काचार्य ने निरुक्त ६।२७ में इस प्रकार की है—"स्तेयं तल्पारोहणं, ब्रह्महत्यां, भ्रूणहत्यां, सुरापानं दुष्कृतस्य कर्मण: पुन: सेवां पातकेऽनृतोद्यम्" इति। (स्तेयम्) चोरी, (तल्पारोहणम्) व्याभिचार, (ब्रह्महत्याम्) ब्रह्महत्या, (भ्रूणहत्याम्) गर्भहत्या, (सुरापानम्) मद्यपान, (दुष्कृतस्य कर्मण: पुन: पुन: सेवाम्) दुष्ट कर्म का बार-बार सेवन और (पातकेऽनृद्यम्) पाप करके उसे छिपाने के लिए मिथ्या भाषण करना (इति) ये सात मर्यादा बताई हैं।"

५. 'पद्मपुराण' में बौद्ध व जैन मत की चर्चा

भगवान् बुद्ध

"प्रलम्बहन्त्रे शितिवाससे नमो नमोऽस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ॥९४॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, देवासुर संग्राम समाप्तौ, विजयस्तोत्रम्, अ. ७७

"सर्वज्ञानायमत्स्याय नमोरामाय तेनम:।
नम: कृष्णायबुद्धाय नमोम्लेच्छप्रणाशिने ॥७०॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्डे, ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने, अध्याय १९

"नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमोनम: ॥१५॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, उमापति नारद संवादे दीपव्रत माहात्म्यम्, अध्याय ३१

"दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्ध रूपिणा ॥५॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्डे, तामस शास्त्रकथनम् अध्याय २३६

जैनमत की व्याख्या

"अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरुः ।
दयाचैव परोधर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते ॥१७॥

दर्शनेऽस्मिन्नसन्देह आचारान्प्रवदाम्यहम् ।
यजनं याजनं नास्ति वेदाध्ययन मेव च ॥१८॥

नास्ति सन्ध्या तपो दानं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
हव्य कव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिका क्रिया ॥१९॥

पितॄणां तर्पणं नास्ति नातिथिर्वैश्वदेविकम् ।
क्षपणस्य वरापूजा अर्हतो ध्यानमुत्तमम् ॥२०॥

अयं धर्म समाचारो जैनमार्गे प्रवृश्ते ।
एतन्ते सर्वमाख्यातं निजधर्मस्य' लक्षणम् ॥२१॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्डे, वेनोपाख्याने, अ. ३७

अर्थ—"(जैनमत में) अर्हन्तो (तीर्थङ्करों) को .देवता एवं निर्ग्रन्थ गुरु माने जाते हैं, जहाँ दया को ही परमधर्म एवं मोक्ष का मार्ग माना जाता है। जिसका दर्शन सन्देह जनक है उसका आचार मैं बतलाता हूँ। जैनमत में यज्ञादि, वेद का पढ़ना, संध्या, तप, दान, हवन, श्राद्ध, यज्ञादि क्रिया, पितरों का तर्पण अतिथि सेवा आदि कुछ भी नहीं है। जैनसाधुओं की पूजा तथा अर्हंतो का ध्यान ही उत्तम माना गया है। यही जैनमार्ग का धर्मसमाचार है और यही जैनमत का लक्षण है।"

जैनमत की निन्दा

"जैनधर्मं समाश्रित्य सर्वे पापप्रोहिताः ।
वेदाचारं परित्यज्य पापं यास्यन्ति मानवः ॥२६॥
पापस्य मूलमेवं वै जैनधर्मो न संशयः ।
अनेन मुग्धा राजेन्द्र महामोहेन पातिताः ॥२७॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्डे, वेनोपाख्यान, अ. ३८

अर्थ—"जैन धर्म सारे पापों से भरा हुआ है। लोग उससे मोहित होकर वेद धर्म के आचार को त्याग कर उसे ग्रहण कर लेते हैं। वे सब पापी हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है कि जैनधर्म पापों की जड़ है। हे राजेन्द्र ! जो इस पर मुग्ध हो जाता है वे पतित हो जाते हैं।"

करोड़ों वर्षों तक दैत्यों का राज्य रहा परन्तु बारी आने पर इन्द्र का राज्य आया, यज्ञ देवों के पास चला गया। यज्ञ की रक्षा के लिए शुक्र के पास असुर गए। शुक्र ने अपने तपोबल से दैत्यों को ¾ भाग यज्ञ का दिया। यह देख कर देवों ने दैत्यों पर आक्रमण किया। असुर भागकर शुक्र की शरण गए। उनकी रक्षा के हेतु शुक्र शंकर की उपासनार्थ गया। पीछे से देवताओं ने दूसरा आक्रमण किया। इस पर दैत्यों ने भय से शस्त्र छोड़ कर घर बार त्याग कर वनवासी साधु, तपस्वी बनना स्वीकार किया और शुक्र की माता की शरण ली। शुक्र की माता ने अपने तपोबल से इन्द्र को निद्रा से स्तब्ध कर दिया। परन्तु विष्णु ने आकर क्रोध में स्त्री का भी वध कर दिया। तपश्चर्या से वापस आकर शुक्र ने स्त्री वध को देखकर विष्णु को शाप दिया कि तूने धर्म को जानते हुए भी स्त्रीघात किया है। अतः सात बार तुझे मनुष्यों में जन्म लेना होगा। शुक्र ने सत्यविद्या के बल से अपनी भार्या को जीवित कर दिया। परन्तु इन्द्र ने अपनी कन्या को शुक्र को मोहित करने के लिए भेज दिया उससे १००० वर्ष के लिए शुक्र मुग्ध रहा। परन्तु इस अन्तर में देवों की प्रार्थना पर वृहस्पति शुक्र का स्वांग भरकर दैत्यों की सभा में आचार्य बन गया। कुछ काल के पश्चात् वास्तव में शुक्र आये। उसे देख कर सब अचम्भित हुए परन्तु इस झूठे शुक्र ने वास्तविक शुक्र को बहुत मिथ्या तथा छली कहकर अपमान किया। वह फिर अपमान के कारण वन में ही चला गया। पीछे से वृहस्पति ने अपनी उलटी पट्टी पढ़ानी प्रारम्भ की।

इस शिक्षा में चार्वाक तथा बौद्ध और जैन बनाने का प्रयत्न किया इसके लिए उसने विष्णु का ध्यान किया। विष्णु ने महामोह का निर्माण

करके कहा कि यह सब दैत्यों को धर्म से डिगा देगा। उसी महामोह ने दिगम्बर भुशण्डमयूर के पंख धारण करने वाले जैनी का रूप धारण किया और आर्हत धर्म की दीक्षा दी। यही कथा विष्णुपुराण की समालोचना में दिखा आए हैं। इसमें शुक्र का शाप तथा बृहस्पति का एवं रूपेण वञ्चन विशेष है।

फिर महामोह या मायामोह ने रक्ताम्बर धारण कर निर्वाण सिद्धान्ती सौगतों की दीक्षा पर कमर कसी। उनको तत्ववाद सिखाया।

इस प्रकरण में पुराणकार ने जैनियों तथा बौद्धों के बहुत से सिद्धान्तों को तथा साम्प्रदायिक परिभाषाओं का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि यह पुराण बौद्धों और जैनियों के २४ तीर्थङ्करों के हो चुकने के बाद तथा इस मत के खूब फैल चुकने पर बना है। और उनके विरोध के लिए उनके धार्मिक सिद्धान्त पर आक्षेप न करके छोटी-छोटी बातों पर आक्षेप तथा हास्य करने का प्रयत्न किया है। जैसे केशलुञ्चन से कुबेर बनना आदि।

मायामोह का उपदेश—

दानवाउचुः

"संसारेऽस्मिन्नसारेतुकिंचिज्ज्ञानं प्रयच्छनः।
येन मोक्षं व्रजामश्चप्रसादात्तवसुव्रत ॥३१२॥
ततः सुरगुरुः प्राहकाव्यरूपी तदागुरुः ॥३१३॥
(बृ. उ.) ज्ञानं वक्ष्यामिवोदैत्याअहंवैमोक्षयायियत् ॥३१४॥
एषाश्रुतिर्वैदिकीया ऋग्यजुः सामसंज्ञिता ॥३१५॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३

अर्थ—"यह सम्पूर्ण संसार तो सार से हीन है, इसमें हम लोग उत्पन्न होकर आ गए हैं तो कृपा करके हमको कुछ ज्ञान दीजिए। हे सुव्रत! ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिए जिसे पाकर हम लोग मोक्ष की प्राप्ति कर लेवें।

आपके प्रसाद से हमारा आवागमन का भव-बन्धन छूट जावे। ऐसा पूछने पर भार्गव के स्वरूप को धारण करने वाले सुरगुरु ने कहा। हे दैत्यो! आप सबको वह मोक्ष प्रदान कर देने वाला ज्ञान बतलाऊँगा। ऋक्-यजु और साम संज्ञावाली जो यह वैदिकी श्रुति है।

वेदनिन्दा—

"वैश्वानर प्रसादात्तु दुःखदा प्राणिनामिह ॥३१५॥
यज्ञश्राद्धं कृतं क्षुद्रै रैहिकस्वार्थं तत्परैः ॥३१६॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३

अर्थ—"यह वैश्वानर के प्रसाद से इस संसार में प्राणियों को दुःख प्रदान करने वाली ही है। लौकिक तुच्छ स्वार्थ में परायण लोगों के द्वारा यज्ञ और श्राद्ध आदि किए जाते हैं।

मायामोह की उत्पत्ति—

"मायामोहोऽयम खिलांस्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति।
भवता सहितः सर्वान्वेदमार्गं वहिष्कृतान्।
एवामादिश्य भगवानंतर्धानं जगामह ॥३४४॥

तपस्यभिरतान्सोऽथमायामोहोगतोऽसुरान्।
तेषां समीपमागत्यवृहस्पतिरुवाचह ॥३४५॥

अनुहार्थंयुष्माकं भक्त्या प्रीतस्त्विहागतः।
योगीदिगम्बरोमुण्डोर्वहिपत्र धरोह्ययम् ॥३४६॥

इत्येक्तेगुरुपश्चान्मायामोहोऽब्रवीद्वचः ॥३४७॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३

अर्थ—'यह मायामोह उन समस्त दैत्यगण को मोहित कर देगा' तब आपहितपूर्वक उन सब वेद के मार्ग से बहिष्कृत दानवों को मोहित कर देना।

इस प्रकार आदेश देकर भगवान् अन्तर्धान हो गए। मायामोह

तपस्या करते हुए असुरों के पास गया और उनके समीप आकर वृहस्पति ने कहा। आप लोगों की भक्तिभाव से प्रसन्न, आप सबके ऊपर अनुग्रह करने के लिए वर्हिपत्रधारी मुण्ड दिगम्बर योगी वहाँ आया है। गुरु ने तो इतना ही कहा था—इसके पश्चात् मायामोह ने यह वचन बोला था।

मायामोहदिगम्बर उवाच—

आर्हत जैन

> "कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३४९॥
> आर्हतं सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम्।
> धर्माद्विमुक्तेरर्होऽयं नैतस्माद परः परः ॥३५०॥
> अत्रैवावस्थिताः स्वर्गं मुक्तिचापि गमिष्यथ।
> एवं प्रकारैर्बहुभिर्मुक्ति दर्शनवर्जितै ॥३५१॥
> मायामोहन ते दैत्या वेदमार्गं वहिष्कृताः ॥३५२॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—(मायामोहबोला)—यदि आप लोगों की मुक्ति की इच्छा है तो जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। आप लोग मुक्ति के खुले द्वार रूप इस धर्म का आदर कीजिए। यह धर्म मुक्ति में परमोपयोगी है। इससे श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है। इसका अनुष्ठान करने से आप लोग स्वर्ग अथवा मुक्ति, जिसकी कामना करेंगे, प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार नाना प्रकार से मुक्ति दर्शन् से वर्जितों के द्वारा और मायामोह से वे दैत्य, वेदमार्ग से वहिष्कृत कर दिए गए थे।

अतिनास्तिवाद—

> "धर्मायैतदधर्माय सदेत दसदित्यपि ॥३५२॥
> विमुक्तये त्विदंनैतद्विमुक्तिसंप्रयच्छति।
> परमार्थोऽयमत्यर्थंपरमार्थोनचाप्ययम् ॥३५३॥

कार्यमेतदकार्यं हिनैतदेतत्स्फुटंत्विदम् ।
दिग्वाससामयं धर्मोधर्मोऽयं बहुवासेसाम् ॥३५४॥

इत्यनेकार्थवादांस्तुमायामोहेनतेयतः ।
उक्तास्ततोऽखिलादैत्याः स्वधर्मांस्त्याजितानृप ॥३५५॥

अर्हध्वंमामकंधर्ममायामोहेनतेयतः ।
उक्तास्तमाश्रिताधर्ममार्हतास्तेनतेऽभवन् ॥३५६॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'यह धर्मयुक्त है और यह धर्म विरुद्ध है, यह सत् है और यह असत् है, यह मुक्तिकारक है और इससे मुक्ति नहीं होती, यह आत्यन्तिक परमार्थ है और यह परमार्थ नहीं है। यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है, यह ऐसा नहीं है और यह स्पष्ट ऐसा ही है, यह दिगम्बरों का धर्म है और यह साम्बरों का धर्म है। हे नृप ! ऐसे अनेक प्रकार के अनन्तवादों को दिखाकर माया मोह ने उन समस्त दैत्यों को स्वधर्म से च्युत कर दिया। मायामोह ने दैत्यों से कहा था कि आप लोग इस महाधर्म को 'अर्हंत' अर्थात् इसका आदर कीजिए। अतः उस धर्म का अवलम्बन करने से वे 'आर्हत' कहलाए।'

वेदत्रयीत्याग—

"त्रयी मार्गं समुत्सृज्यमायामोहेनतेऽसुराः ।
कारितास्तन्म याह्यासंस्तथान्येतत्प्रबोधिताः ॥

तैरप्यन्ये परेतैश्च तैरन्योन्यैस्तथापरे ।
नमोऽर्हते चेति सर्वे संगमे स्थिर वादिनः ॥३५८॥

अल्पैरहोभिः संत्यक्ता स्तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ॥३५९॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—मायामोह ने असुरगण को त्रयीधर्म से विमुख कर दिया और वे मोहग्रस्त हो गए; तथा पीछे उन्होंने अन्य दैत्यों को भी इसी धर्म में

प्रवृत्त किया ।। १२ ।। उन्होंने दूसरे दैत्यों को, दूसरों ने तीसरों को, तीसरों ने चौथों को तथा उन्होंने औरों को इसी धर्म में प्रवृत किया। सभी स्थिरवादी अर्हंतों को नमस्कार है। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में दैत्यगण ने वेदत्रयी का प्राय: त्याग कर दिया।'

रक्ताम्बर सौगत—

"पुनश्चरक्तांवरधृन्मायामोहोजितेक्षण: ।।३५९।।
सोऽन्यानप्य सुरान्गत्वा ऊचेऽन्यन्मधुराक्षरम् ।

स्वर्गार्थयदिवोवाञ्छानिर्वाणार्थायवापुन: ।
तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैंर्निबोधत ।
बौद्धों का विज्ञानवाद—विज्ञानमयमेत द्वै त्वशेषमधिगच्छत ।।३६१।।"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'तदनन्तर जितेन्द्रिय मायामोह ने रक्तवस्त्र (लालवस्त्र) धारण कर अन्याय असुरों के पास जा उनसे मृदु, अल्प और मधुर अक्षरों में कहा। यदि तुम लोगों को स्वर्ग अथवा मोक्ष की इच्छा है तो पशुहिंसा आदि दुष्ट कर्मों को त्याग कर बोध प्राप्त करो। यह सारा जगत् विज्ञानमय है—ऐसा जानो।'

देवों की निन्दा—

"अर्द्ध नारीश्वरोरुद्र: कथं मोक्षं गमिष्यति ।।३१७।।
वृतोभूतोगणैर्भूरिभूषितश्चास्थिभिस्तथा ।
न स्वर्गोनैव मोक्षोऽत्रलोका: क्लिश्यंतिवैतथा ।।

हिंसायामास्थितो विष्णु: कथं मोक्षंगमिष्यति ।
रजोगुणात्मको ब्रह्मा स्वां सृष्टिमुपजीवति ।।

देवर्षयोऽथवेचान्ये वैदिकं पक्ष माश्रिता: ।
हिंसा प्राया: सदा क्रूरामांसादा: पापकारिण: ।।

सुरास्तुमद्यपानेन मांसादा ब्राह्मणास्त्वमी ।
धर्मेणानेनकः स्वर्गं कथं मोक्षं गमिष्यति ॥३२१॥"
—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'अर्द्धनारीश्वर रुद्र किस प्रकार मोक्ष को प्राप्त होंगे । भूत-गण हैं और अस्थि से भूषित हैं । यहाँ लोक में न स्वर्ग है और न मोक्ष है । हिंसा में स्थित विष्णु कैसे मोक्ष को पायेंगे ? रजोगुणात्मक ब्रह्मा स्वयं सृष्टि उपार्जन करते हैं । देवर्षि तथा अन्य वैदिक पक्ष के आश्रित हैं । हिंसाप्रिय, सदा कठोर, मांसाहारी, पापी, ब्राह्मण सुरा, मद्यपीने तथा मांस भक्षी हैं । ये स्वर्ग व मोक्ष कैसे प्राप्त करेंगे ?'

प्राचीन पुरुष निन्दा—

"तारां वृहस्पतेर्भार्यां हृत्वा सोमः पुरागतः ।
तस्यांजातो बुधः पुत्रो गुरुर्जग्राहतांपुनः ॥३३१॥
गौतमस्यमुनेः पत्नीमहल्यां नामनामतः ।
अगृह्णात्तांस्वयंशक्रः पश्य धर्मोयथाविधः ॥३३२॥
एतदन्यच्चजगतिदृश्यते पापदायकम् ।
एवंविधो यत्र धर्मः परमार्थो मस्तस्तुकः ॥३३३॥"
—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—प्राचीनकाल में सोम (चन्द्र) ने वृहस्पति की तारा भार्या को हरण कर लिया । उससे बुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको पुनः गुरु (वृहस्पति) ने ग्रहण किया । गौतम मुनि की अहल्या नामक पत्नी को इन्द्र ने स्वयं शीलभंग किया । इस प्रकार जगत् पापदायक दिखाई देता है । इस प्रकार जहां धर्म है वहाँ परमार्थ कहां ?

प्रच्छन्न बौद्ध मायावादी—

"जगदेतदनाधारं भ्रांतिज्ञानानुतत्परम् ॥३६२॥
रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यतेभवसंकटे ॥३६३॥"
—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'यह संसार निराधार है, भ्रमजन्म पदार्थों की प्रतीति पर ही स्थिर है तथा रागादि से दोषों से दूषित है। इस संसार-संकट में जीव अत्यन्त भटकता है।'

यज्ञ निन्दा—

"नैतद्युक्ति सहंवाक्यंहिंसा धर्मायजायते ॥३६५॥
हवींष्यनलदग्धानिफलान्यहंतिकोविदाः ।
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्ग प्राप्तियदीष्यते ॥३६६॥
स्वपितायजमानेन किं वा तत्र न हन्यते ॥३६७॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—(वे कहने लगे) 'हिंसा से भी धर्म होता है—यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। अग्नि में हवि जलाने से निष्फल होता है यह पण्डित लोग कहते हैं। यदि यज्ञ में बलि किए गए पशु की स्वर्ग-प्राप्ति होती है तो यजमान अपने पिता ही को क्यों नहीं मार डालता ?'

श्राद्ध निन्दा—

"तृप्तये जायतेपुंसो भुक्तमन्येन चेद्यदि ॥३६७॥
दयाछ्राद्धं प्रवसतो नवहेयुः प्रवासिनः ॥३६८॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन करने से भी किसी पुरुष की तृप्ति हो सकती है तो प्रवास में रहने वाले को भी श्राद्ध दिया जाने से वह प्रवासी भी उसे प्राप्त कर तृप्त हो जाना चाहिए।

वेदों का हास्य—

"नह्याप्तवावानभसोनिपतंति महासुराः ॥३७०॥
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय १३]

अर्थ—'हे असुरगण ! श्रुति आदि आप्तवाक्य कुछ आकाश से नहीं गिरा करते । हम तुम और अन्य सब को भी युक्तियुक्त वाक्यों को ग्रहण कर लेना चाहिए ।'

जैनदीक्षा—

"देहि दीक्षांमहाभागसर्वं संसारमोचनीय ॥३७६॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'हे महाभाग्यवाले ! आप इस संसार से मोचन (छुटकारा) कराने वाली दीक्षा हम लोगों को दे दीजिये ।'

"भो भोस्त्यजतवासांसिदीक्षांकारयिता स्मिवः ।
एवं ते दानवाभीष्मभृगुरूपेण धीमता ॥
आंगिरसेनतेतत्रकृतादिग्वाससोऽसुराः ।
बर्हिपिच्छध्वजंतेषांगुंजिका चाद्मालिकाम् ॥
दत्वा चकार तेषां तु शिरसो लुंचनंततः ।
केशस्योत्पाटनं चैव परमं धर्म साधनम् ॥३७९॥
धनानामीश्वरो देवोधनदः केशलुंचनात् ।
सिद्धि पर मिकां प्राप्ताः सदावेषस्य धारणात् ॥३८०॥
नित्यत्वंलभ्यतेह्यवंपुराप्राहर्हतः स्वयम् ।
बालोत्पाटेनदेवत्वं मानुषैर्लभ्यतेत्विह ॥३८१॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १३]

अर्थ—'हे दैत्यो ! आप सब लोग वस्त्रों का त्याग कर दें अब मैं आपको दीक्षा प्रदान करूंगा । हे भीष्म ! इस प्रकार से श्रीमान् भृगुरूप-धारी बृहस्पति ने उन सब असुरों को वहां पर दिगम्बर कर दिए थे । फिर उन सबको उसने बर्हिपिच्छ की ध्वजा और गुञ्जा की माला दे दी थी । यह देकर पुनः उनके शिरों का लुचन किया था तथा केशों का उत्पाटन भी किया था जो कि धर्म का परम साधन था ॥ ३७९ ॥ धनों का स्वामी

धनददेव हैं। सदा वेष के धारण करने से और केशों के लुंचन से परमसिद्धि को प्राप्त हो गए थे ॥ ३८० ॥ इस प्रकार से नित्यत्व की प्राप्ति होती है। यह पहिले ही अर्हत ने स्वयं अपने मुख से कहा था। यहाँ पर बालों के उत्पाटन करने से मनुष्यों को देवत्व की प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८१ ॥' किस प्रकार परकीय धर्म को लक्ष्य में रख कर निन्दा करने का प्रयास किया गया है।

(६) 'पद्मपुराण' में व्याकरण की अशुद्धियाँ—

(क) "पुष्करे तु अजं दृष्ट्वा".........।

—पद्मपुराण ५।२९।२४१[५५]

यहाँ रूप में संशोधित किया गया है।

(ख) "पुण्यस्य पुण्यतां कुर्वन् पञ्चस्रोताः सरस्वती।"

—पद्मपुराण ५।१८।१३९ पू.[५६]

[अत्र 'सरस्वती' इत्यस्य विशेषणत्वेन (विधेयत्वेन) कुर्वन् 'इति 'शतृ' प्रत्ययान्तं पुल्लिङ्गरूपं सर्वथाऽसाधु। अस्य स्थाने 'कुर्वती' इत्येव प्रयोगः साधुःस्यात्। परन्त्वनेन प्रयोगेणच्छन्दोभङ्गो जायेत। अतः छन्दोऽनुरोधादेव 'कुर्वन्' इति पाठोऽत्र प्रयुक्तः]

(ग) पाठभेद—

"ताते मेऽवस्थिते.........."

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. २३

"ताते ममस्थिते" इति आनन्दाश्रम, पूना मुद्रित पुस्तकेपाठः।

(घ) "बलमेतन्निरीक्षेऽहं.........."

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. २६

---

५५. "पुराण-विमर्श" पृष्ठ ५८३ तथा षण्मासिक "पुराणम्" पत्रिका, वाराणसी, जुलाई १९६२ ई., जि. ४ संख्या २, पृष्ठ २८४।

५६. षण्मासिक पत्रिका "पुराणम्" वाराणसी, जुलाई १९६२ ई., जि. ४ सं. २, पृष्ठ २९२।

'तन्निरीक्षेतं' इति आनन्दाश्रम, पूना पुस्तके पाठः।

(ङ) "शत्रुघ्नोऽपि रथस्थश्च........" ॥३॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. २६

"रथे संस्थ" इति आनन्दाश्रम पुस्तके पाठः।

(च) "सर्वदा भ्रातरो मह्यं मद्वाक्यकरणोत्सुकाः ॥२४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ५८

"शोकवन्तो भ्रातरो मे कर्तव्यो मूढ़चेतसः" इति पुस्तकान्तरे पाठः।

(छ) "रथं मे कुरु सज्जं वै स सश्ववरभूषितम् ॥४८॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ५८

"सदश्वाम्बरभूषितम्" इति आनन्दाश्रम पुस्तकेपाठः।

(ज) "जग्राह रघुनाथस्य पत्नीस्वप्रियकाम्यया ॥५७॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ५८

"प्रियकरी वरा' इति आनन्दाश्रम पुस्तकेपाठः।

(झ) "..........चालयाश्वान्मनो जवान्" ॥६०॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ५८

"मनोहरान्'-इति च पाठः।

(ञ) "जपन्तीरामरामेति........ ..." ॥७२॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ५९

"राम राम जपन्त्याशु" इत्यानन्दाश्रम पुस्तकेपाठः।

(ट) "..........बालकेन हय प्रहम्" ॥६॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ६०

"हयं हृतम्" इत्यपि पाठ आनन्दाश्रम पुस्तके।

(ठ) "गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गल्लिके नीलपर्वते ॥४०॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. ८१

'बिल्वके' इत्यपिपाठः ।

(ड) "सीतायाः पतये नमः ॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय २५४, श्लोक ५६ व ६३

यहां 'पतये' शब्द अशुद्ध है । यदि कोई कहे कि 'आर्ष प्रयोग' है तो लौकिक ग्रन्थों में 'आर्ष प्रयोग' नहीं होता है केवल वेदों में 'आर्ष प्रयोग' होता है ।

(ढ) "पुत्रेति तन्मयतया तस्वोऽभिनेदुः ।"

—पद्मपुराण उ. भा. मा. ६।१६३।३[५७]

यहां 'पुत्रेति' अशुद्ध है । 'पुत्र-इति' होना चाहिए ।

(ण) "अन्यस्याम............" —पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. ११०

'अस्यामेवा' इत्यपि पाठः ।

पुनरुक्ति दोष—

(त) पद्मपुराण, पातालखण्ड की ८९ की अध्याय से ९२ की अध्याय तक पाठ कुछ अंशों के परिवर्तन, परिवर्द्धन के साथ द्वितीय भूमिखण्ड में १७वीं अध्याय के समान ही उपलब्ध होता है ।

"सर्वं देहि समाख्यातं धर्माख्यं ज्ञानमुत्तमम् ।
कथं पुत्रमहं विद्यां वैष्णवं गुण संयुतम् ।
वदत्वं मे महाभागे ! यदि जाना सि सुव्रते !

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ८९, श्लोक १२, १३

यही श्लोक पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय १७, श्लोक १, २ है ।

"पूर्वजन्मकृतंपापं त्वया ऽऽख्यातं ममैवतत् ।
शूद्रत्वेन हि विपेन्द्र मयैवंधनमर्जितम् ॥१॥

५७. "पुराण तत्त्व-मीमांसा" पृष्ठ ९१ तुलना करो "पुराण-दिग्दर्शन" पृष्ठ १६३ ।

विप्रत्वं हि मया प्राप्तं तत्कथं द्विजसत्तम ।
तत्सर्वं कारणं ब्रूहि ज्ञान विज्ञान पण्डित ॥२॥
—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय १८

यही श्लोक 'पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ९० (श्लोक १-२) में है।

"पुण्येन गाङ्गेन जलेन काले देभेऽपि यः स्नानपरोऽपि भूप !
आजन्मतो भावहतोऽपि दाता न शुद्धिमेतीति मतं ममैतत् ॥३०॥
गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति जीवा देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम् ।
विनाशमायान्ति कृतोपवासा भावोज्झिता नैव गतिं लभन्ते ॥३१॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय श्रीमाधवं माधवमासि भक्त्या ।
यजेत यः स्नानपरोविशुद्धः पुण्यं न भक्ता वयमस्य वक्तुम् ॥३२॥
—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ८७

ये तीनों श्लोक पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय ९२ (श्लोक ३०, ३१, ३२) में है। यहाँ श्लोक ३० में थोड़ा अन्तर है। अ. ८७ श्लोक ३० में..........'देशेऽपि यः स्नानपरोऽपि भूप !' है पर अ. ९२ श्लोक ३० में 'देशे बुधः स्नानघरः कथञ्चित् ।' शेष वैसे ही हैं।

"एक विंशति भर्तारः कालेकालेमृताः पितः ।
ततो राजा महादुःखी सञ्जातः ख्यातविक्रमः ॥७१॥
समालोच्य समाहूय समामन्त्र्य समन्त्रिभिः ।
स्वयंवरे महाबुद्धि चकार पृथिवीपतिः ॥७२॥"
—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ८५

ये ही श्लोक पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ९२ (श्लोक ५२, ५३) में है।

पातालखण्ड में थोड़ा अन्तर है। भूमिखण्ड में "मृताः पितः" है तो पातालखण्ड में "मृतास्ततः" है। भूमिखण्ड में "समालोच्य 'समाहूय

समामन्त्र्य सममन्त्रिभि.' पाठ है, परन्तु पातालखण्ड में "समालोक्य तमाहूय मन्त्रिभिः सह निश्चलः" पाठ है।

(७) पद्मपुराण में वैदिक सिद्धान्त—

(१) वैदिक अभिवादन प्रणाली "नमस्ते" का प्रयोग—

(क) पृथ्वी द्वारा वराह परमात्मा को 'नमस्ते'

"नमस्ते सर्वभूताय नमस्ते परमात्मने ॥३२॥
परमात्मन् नमस्तेऽस्तु पुरुषात्मन् नमोस्तुते ॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ३

(ख) महादेवजी को 'नमस्ते'

"नमस्ते सर्वबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ॥१४७॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० २१

(ग) गङ्गाजी को 'नमस्ते'

"नमस्ते पापनिर्मोके नमो देवि जगत्प्रिये ॥११८॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ३२

(घ) सावित्री को 'नमस्ते'

"नमस्ते देवदेवेशिब्रह्मपत्नि नमोऽस्तुते ॥३७॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ३४

(ङ) ब्रह्मा को 'नमस्ते'

"सदा हृदिस्थो भगवन्नमस्ते नमामि नित्यं भगवन्पुराण ॥११६॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ३४

(च) विष्णु को 'नमस्ते'

"नमः कमल पत्राक्ष नमस्ते पद्म जन्मने ॥१२०॥
नमस्ते सर्वदेवेश नमो वै मोहनाशन ॥१२१॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ३४

(छ) शंकरजी को 'नमस्ते'

"नमस्ते देवदेवेश भक्तानाम भयङ्कर ॥१३९॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ४०

(ज) ब्रह्माजी को 'नमस्ते'

"नमो देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ॥१६४॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ४०

(झ) देवों द्वारा स्कन्द को 'नमस्ते'

"नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय ॥१५७॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ४६

(ञ) अन्धक द्वारा शिवजी को 'नमस्ते'

"सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु सर्वदेवनमस्कृत ॥६९॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ४८

(ट) सरस्वती को 'नमस्ते'

"सत्यं ब्रूहि प्रियं ब्रूहि भगवति सरस्वती नमस्ते नमस्त इति ॥६९॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० १०४

(ठ) हरि द्वारा शिवजी को नमस्ते

"नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु त्वामेव शरणं गतः ॥२३४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० १०५

(ड) हनुमान्‌जी द्वारा शंकर को 'नमस्ते'

"नमस्तेत्यादीनां वेदवाक्यानां निचयेनमः ॥२८३॥

नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु भूय एव नमो नमः ॥२८६॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ११४

"नमस्तेत्यादि मन्त्रेण शतरुद्रिय विधानतः ॥३२४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ११४

(ढ) कौशल्या द्वारा विष्णुजी को 'नमस्ते'

"....शाश्वत ! हरे ! नमस्ते नमस्ते एवं स्तुतो भगवानथ राजानमाह।"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ११६

(ण) सूर्य को 'नमस्ते'

"अर्घं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः।
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥४०॥

सहस्ररश्मये सूर्य नमस्ते सर्व तेजसे।
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ॥४१॥

पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषिते।
नमस्ते सर्वलोकेश सुप्तानामुपबोधन ॥४२॥

सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसिसर्वदा।
सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु ! प्रसीद मम भास्कर !
दिवाकर नमस्तेऽस्तु ! प्रभाकर नमऽस्तुते !

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ९५

"नमस्ते देवदेवेश ! नमस्ते करुणाकर।
नमस्ते शाश्वतानन्त नमस्ते वरदोभव ॥८०॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. १०८

(त) राजा जनक द्वारा शंकरजी को 'नमस्ते'

"स्मृतमङ्गलप्रद ! मृत्युञ्जय ! नमस्ते नमस्ते।"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ११६

(थ) श्रीरामचन्द्रजी को 'नमस्ते' (वाली द्वारा)

"मस्तके निधाय नमस्ते राम ! शृणु वचनं मम ॥२७॥

(द) रामचन्द्रजी द्वारा शिवजी को 'नमस्ते'

"....जगन्मय ! नमस्ते नमस्ते।"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ११६

(ध) हरि को 'समस्ते'

"सन्निवृत्तं च भवतान्नमस्ते द्विज प्रभो ॥१९०॥"

—पद्मपुराण, ६ पातालखण्ड, अ. ११७

(न) दशरथ द्वारा शनि को 'नमस्ते'

"नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः

"नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तुते ।

सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ॥

अधोदृष्टे ! नमस्तेऽस्तु संवर्तक ! नमोऽस्तुते ॥३३॥

ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे ॥३५॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. ३४

(प) सुब्रह्मण्य को 'नमस्ते'

"सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु पुण्यराशि विवर्धन ॥५७॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. ३६

(फ) भास्कर को 'नमस्ते'

"नमस्ते भास्करादित्यत मोहन्तर्गभस्तिमन् ॥५८॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. १९७

(ब) विष्णु भगवान् को 'नमस्ते'

"नमस्तेऽतसी पुष्पसङ्काशभासं तनुं विभ्रत्पीतवासो वृताय॥३६॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २१२

(भ) कलिङ्ग द्वारा 'नमस्ते'

"नमस्ते परमेशान । केवल ज्ञानहेतवे ॥८४॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २१६

(म) महामाया द्वारा विष्णु को 'नमस्ते'

"नमस्ते त्रिजगद्धाम्ने नमस्ते विश्वरूपिणे ॥७६॥

नमस्ते यज्ञपुरुष हव्य कव्य स्वरूपिणे ॥८३॥

ब्रह्मणे विष्णवे तुभ्यं नमस्ते शङ्कराय च ॥८५॥

नमस्ते वासुदेवाय पञ्चावस्थस्वरूपिणे ॥८८॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २२८

(य) देवताओं द्वारा वराह भगवान् को 'नमस्ते'

नमस्ते वेद वेदाङ्गतनवे विश्वरूपिणे ॥२०॥

नमस्ते वेदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गाय ते नमः ॥२४॥

नमस्ते चिद चिद्वस्तुविशिष्टैक स्वरूपिणे ॥२७॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २३७

(र) कृष्णजी को 'नमस्ते'

"नमो नमस्ते सर्वात्मंस्तत्त्व ज्ञानस्वरूपिणे ॥१०८॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २४५

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! सर्वज्ञाऽमित विक्रम ॥१८७॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष श्रीशसर्वेश केशव ॥२०९॥

नमस्ते वासुदेवाय गोपवेषाय ते नमः ॥२१०॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २४५

"नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! गोविन्दाऽच्युत माधव ॥५१॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. २५०

नमः परम कल्याण । नमस्ते परमात्मने ॥६७॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय २४६

(ल) ब्रह्मा द्वारा विष्णु को 'नमस्ते'

"नमो नमस्ते परमेश्वराय प्रपन्न सर्वात्तिविनाशनाय ।

नमो नमस्ते त्रिगुणात्मकाय नारायणायाऽमित विक्रमाय ॥६१॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोग सारखण्ड, अ. २

"नमस्ते भक्त तुष्टाय नमस्ते भक्तिदायिने ।

नमस्ते ज्ञानरूपाय शरणं मे भवाऽनघ ॥६८॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड, अ. २

(व) विष्णु को 'नमस्ते'

"..............प्रसीद विष्णो । सततं नमस्ते ॥६२॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसार खण्ड, अध्याय ४

"नमस्ते कमलाकान्त ! भुक्तिमुक्ति फलप्रद ॥६८॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड, अ. ४

(श) कृष्णजी को 'नमस्ते'

"नमस्ते देवदेवाय नमस्ते परमात्मने ।
परेशाय सुरेशाय नमस्ते ज्ञानदायिने ॥१७५॥
नमस्ते परमानन्द पुरुषोत्तम केशव !
नमस्ते पद्मनेत्राय कमलापतये नमः ॥१७६॥
नमस्ते बहुरूपाय नीरूपाय नमो नमः ॥१७७॥
नमस्ते ज्ञानगम्याय नमस्ते सर्व शाखिने ॥१७८॥
कंसारये नमस्तुभ्यं नमस्ते कैटभारये ॥१७९॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड; अ. ६

(ष) विष्णुजी को 'नमस्ते'

"नमोऽस्तु पद्मापतये नमस्ते पद्मचक्षुषे ॥९६॥
तार्क्ष्यध्वजाय वै तुभ्यं नमस्ते चक्र पाणये ॥९७॥

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड, अ. ११

(स) ब्राह्मण द्वारा शङ्करजी को 'नमस्ते'

"नमस्तुभ्यं महादेव नमस्ते परमेश्वर !
नमस्ते शङ्करेशान ! नमस्ते वरद ! प्रभो ! ॥१०५॥
नमस्ते ज्ञानरूपाय नमस्ते ज्ञानदायिने ।
नमस्ते सर्वभूतानां हृदम्बुज निवासिने ॥१०६॥
नमस्तेऽस्तु त्रिनेत्राय नमस्ते वह्निचक्षुषे ।
नमस्ते चन्द्रनेत्राय सूर्यनेत्राय वै नमः ।
नमस्ते भस्मभूषाय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥१०९॥
नमस्ते पञ्चवक्त्राय नमस्ते शूलपाणये ॥११०॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते त्रिपुरारये ।
पार्वतीपतये तुभ्यं नमस्ते भीममूर्तये ॥१११॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोग सारखण्ड, अ. १३

(ह) महात्मा को 'नमस्ते'

"त्वं मे गुरुर्द्विजश्रेष्ठ ! नमस्तेऽस्तु महात्मने ॥६०॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड, अ. २१

(क्ष) महेश्वर को 'नमस्ते'

"नमस्ते सर्व सत्वेश महेश्वर नमो नमः ॥१००॥"

—पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ. १४

(त्र) यम को 'नमस्ते'

"नमस्ते सर्वशमन ! नमस्ते जगताम्पते ॥१५॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ९७

(ज्ञ) रतिपते को 'नमस्ते'

"देवदेव नमस्तेऽस्तु श्री विश्वेश नमोऽस्तु ते ।
रतिपते नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्व मण्डन ! ॥१५॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अ. ८४

(अ) विष्णु द्वारा शिव को नमस्ते

"नमस्ते देव देवेश नमस्ते शाश्वताव्यय ॥१९२॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय १०५

(२) वास्तविक तीर्थ

"सत्यंतीर्थंदया तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः ॥८१॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ११

अर्थ—"सत्यतीर्थं, दयातीर्थं, इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों का दमन) तीर्थ हैं ।

टिप्पणी—जब सत्य, दया और इन्द्रिय निग्रह ही तीर्थ हैं तो गया, वाराणसी, हरिद्वार, रामेश्वर प्रभृति तीर्थ स्थानों में जाना ही व्यर्थ है ।

(३) ब्रह्माजी का गोप कन्या से विवाह करना

संगति—ब्रह्माजी यज्ञ करने के लिए उद्यत थे । यज्ञ में उनकी पत्नी सावित्री ठीक समय न पहुँची तो इन्द्र एक आभीर (अहीर) की कन्या को

लाए जो रूपवती थी। ब्रह्माजी ने इन्द्र से यज्ञ का कार्य सम्पन्न करने के लिए वचन कहा—

"देवी चैषामहाभागा गायत्री नामतः प्रभो।
एव मुक्तेतदाविष्णुर्ब्रह्माणं प्रोक्तवानिदम् ॥१८४॥
विष्णुरुवाच।
तदेनामुद्वहस्वाद्यमयादत्तांजगत्प्रभो ।
गांधर्वेण विवाहे न विकल्पंमाकृथाश्चिरम् ॥१८५॥
अमुंगृहाणदेवाद्य अस्याः पाणिमनाकुलम्।
गांधर्वेण विवाहेन उपयेमेपितामहः ॥१८६॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ॰ १६

अर्थ—यह देवी महान् भागवाली है और हे प्रभो! इसका नाम अब गायत्री है। इस तरह ब्रह्माजी के कहने पर भगवान् विष्णु ने उस समय ब्रह्माजी से कहा ॥१८४॥ विष्णु बोले—हे जगत् के स्वामिन्! मेरे द्वारा समर्पित की हुई इसके साथ आप आज ही विवाह कर लीजिए। गान्धर्व रीति से ही इसके साथ विवाह कर लेना ठीक होगा। इसमें अब देर तक कुछ भी सोच-विचार करने का विकल्प मत करो ॥१८५॥ हे देव! आज ही बिना कुछ सोचे हुए इसका पाणिग्रहण कर इसे स्वीकार कर लीजिए। ऐसा कहे जाने पर ब्रह्माजी ने गान्धर्व विवाह के द्वारा उसके साथ अपना जोड़ा बना लिया था ॥१८६॥

टिप्पणी—पुराणों में आभीरों को नीची दृष्टि से देखा गया है। यहाँ तक कि उनको म्लेच्छ तक भी कहा गया है।

ब्रह्माजी ने उस आभीर कन्या से विवाह कर लिया। ब्राह्मण अपने को ब्रह्मा की सन्तान (मुख से उत्पत्ति) मानते हैं तो इससे ब्राह्मण भी अहीरों की सन्तान हुए।

ब्रह्माजी का आभीर कन्या से विवाह करना भी मनुस्मृति के अनुकूल उचित ही है।

(३) सदाचार की महिमा

"आचारः परमाधर्माः....॥२५१॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १५

अर्थ—आचार ही परम धर्म है।

"आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभतेसुखम्।
आचारोत्स्वर्गं मोक्षं च आचारोहन्त्यलक्षणम्॥
अनाचारो हि पुरुषो लोकेभवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितो ऽल्पायुरेव च॥७८॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, सदाचार वर्णनम्, अध्याय ५१

अर्थ—"आचार से पुरुष आयु की अधिकता का लाभ प्राप्त किया करता है। आचार से मनुष्य को सुख मिलता है। यह आचार ही एक ऐसा महत्त्वशाली होता है कि इससे मनुष्य को स्वर्ग (सुख) तथा मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है। आचार बुरे लक्षणों का विनाश कर देता है। जो पुरुष आचारहीन होता है वह लोक में निन्दित हो जाता है। आचार-हीन पुरुष को सर्वदा दुःख भोगने पड़ते हैं और रोगी तथा कम आयु वाला भी हो जाया करता है।"

टिप्पणी—राजर्षि मनुजी भी कहते हैं—

आचारः परमोधर्मः....॥"

—मनुस्मृति १।१०८

अर्थ—"आचार ही श्रेष्ठ धर्म है।"

"आचाराल्लभते....व्याधितोऽल्पायुरवे च।"

यह श्लोक मनुस्मृति ४।१५६, १५७ के आधार पर है।

(४) गोमय से गृहलेपन

"गोमयेन गृहे नित्यं प्रकुर्याद्वुपलेपनम् ॥८०॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ५१

अर्थ—"नित्यप्रति घर में गोमय से उपलेपन करना चाहिए।"

टिप्पणी—महर्षि दयानन्दजी सरस्वती 'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास में गाय के गोबर से गृह लेपन का वर्णन किया है। इस पर पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्या वारिधि ने 'दयानन्द तिमिरभास्कर' में उपहास किया है। मिश्रजी ने पुराण के इस वचन को नहीं देखा था अन्यथा महर्षि दयानन्दजी के लेख की आलोचना न करते।

(५) गायत्री महिमा

"चतुर्वेदात्परागुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता।
दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम्॥
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बषम्।
गायत्री मक्षमालायां सायं प्रातश्च योजपेत्॥१९५॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ४८

अर्थ—"चारों वेदों में गायत्री गौरवाली हुई थी जो कि मोक्ष को देने वाली है। यह वेद जननी गायत्री दस जन्मों में उत्पन्न हुए और सौ जन्म में पहिले किए हुए, तीन युग और सहस्र जन्म में किए हुए भी पाप का नाश कर दिया करती है। इसकी इस प्रकार की महिमा है कि जो विप्रनित्य प्रति अक्षमाला से सायंकाल और प्रातःकाल में गायत्री का जप किया करता है उसको पाप कभी भी नहीं लगता है।"

(६) कर्म से वर्णव्यवस्था

"ब्रह्मोवाच।
सच्छ्रोत्रियकुले जातो ह्यक्रियो नैवपूजितः।
असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाण्डकौयथा।
क्षत्रियाणांकुले जातो विश्वामित्रोऽस्तिमत्समः।
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धाद्विजादयः॥१२७॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. ४८

अर्थ—"श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो सत् और श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ हो और क्रिया से हीन हो तो वह कभी पूजित नहीं हो सकता है। जो

असत्कुल में तथा असत्क्षेत्र में उत्पन्न हुआ हो वह भी पूज्य हो जाता है जिस तरह व्यास तथा वैभाण्डक पूज्य हो गए हैं। विश्वामित्र भी तो क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु उनकी तपश्चर्या की क्रिया ऐसी उच्चतर थी कि वह मेरे समान ही जगत्पूज्य एवं वन्दनीय हो गए हैं। वशिष्ठ महामुनि वेश्या पुत्र थे और इनके अतिरिक्त अन्य भी द्विज आदि सिद्ध हैं।

टिप्पणी—यहाँ व्यास, वैभाण्डक को असत्कुल व असत्क्षेत्र में उत्पन्न कहा गया है। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। वशिष्ठजी को पुराण-कार स्पष्ट 'वेश्यापुत्र' बतलाता है जो कि श्री माधवाचार्य शास्त्री दिल्ली वाले के पूर्वज थे। अपने इस दोष को छिपाने के लिए आपने महर्षि दयानन्दजी सरस्वती को 'कापड़ी' लिखा है और उनके चरित्र पर ओछा आक्रमण किया है। पौराणिक जन्म से वर्णव्यवस्था मानते हैं और शास्त्रार्थ करते हैं जबकि उनका पुराण ही उनके सिद्धान्त का खण्डन कर रहा है।

(७) गुरु पत्नी से सम्बन्ध (रजस्वला की अवस्था में)

"मलिनां नाभिवन्देत गुरुपत्नीं कदाचन।
न स्पृशेत्तां च मेधावी स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्धयति।
स तया सह केलिं च वर्जयेच्च सदैव हि।
शृणुयाच्च वचो नूनं न पश्येच्च गुरोः स्त्रियम्।
वधूं पुत्रस्य भ्रातुश्च स्वपुत्रीं युवतीं ध्रुवम्।
अन्यां च गुरुपत्नीं च नेक्षेत्स्पर्शं न कारयेत्।
ताभिः सह कथालापं तथा भ्रूभङ्गदर्शनम्।
कलहं निस्त्रपां वाणीं सदैव परिवर्जयेत् ॥१०८॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ५१

अर्थ—"अपने गुरु की पत्नी भी मलिनावस्था में हो तो उस दशा में उसकी भी वन्दना नहीं करनी चाहिए। मेधावी पुरुष को उचित है कि उस दशा में गुरु पत्नी का स्पर्श न करे और यदि भूल से स्पर्श हो भी जावे तो

स्नान कर लेवे। [मलिन दशा से यहाँ रजस्वला होने की अवस्था का तात्पर्य है]। अपनी भी भार्या यदि मलिन हो तो उसके साथ कन्दर्पकेलि कभी न करे। गुरु की पत्नी जो भी कुछ कहे उसके वचनों का तो उस दशा में श्रवण कर लेवे किन्तु उसका दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने पुत्र की वधू, भाई की वधू, अपनी पुत्री जो युवती हो, ऐसी ही अन्य कोई युवती, गुरु की पत्नी इनको न तो देखें और न इनका स्पर्श ही करें।"

टिप्पणी—मनुस्मृति ४/४० में रजस्वला से संभोग का निषेध है तथा ४१ में रजस्वला संभोग से बुद्ध्यादि हानि की चर्चा है।

(८) मातृ पितृ-सेवा का माहात्म्य—

"प्राक्पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः।
न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवी॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया चगुणेन च।
तस्य भागीरथी स्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात्सर्वं यत्नेन पूजयेत्॥११॥
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयां लभते दिवम्॥१३॥
तयोश्चरण योर्यावद्रजश्चिह्नानि मस्तके।
प्रतीके चविलग्नानि तावत्पूतः सुतस्तयोः॥
पादारविन्द सलिलं यः पित्रोः पिबते सुतः।
तस्य पापं क्षयं याति जन्म कोटि शतार्जितम्॥
धन्योऽसौ मनवो लोके पूतोऽसौ सर्वकल्मषात्।
विनायकत्वमाप्नोति जन्मनैं के न मानवः॥१६॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. ५२

अर्थ—सर्वप्रथम अपने माता-पिता की अर्चना करके विप्र को जिस महान् धर्म की सिद्धि होती है वैसी इस भू-मण्डल में सैकड़ों यज्ञों के करने से तथा महान् तीर्थों की यात्रा आदि के करने से भी नहीं हो सकती है। अतएव ब्राह्मणों का यही परम कर्त्तव्य है कि माता-पिता की पूजा एवं शुश्रूषा भक्तिपूर्वक करे। संसार में पिता ही साक्षात् धर्म का स्वरूप है पिता की अराधना से धर्म प्राप्त हो जाता है। पिता ही स्वर्ग है अर्थात् पिता की पूजा सेवा से ही सुख प्राप्त होता है। पिता की सेवा कर उन्हें सन्तुष्ट करना सबसे बड़ी तपश्चर्या है। जब पुत्र पर उसके पिता प्रसन्न हो जाते हैं तो उस पर सभी देवगण प्रसन्न होकर कृपा किया करते हैं। जिनके पितर सेवाभाव से और गुण-गरिमा से पूर्व तृप्त एवम् सन्तुष्ट हो जाते हैं उसकी प्रतिदिन भागीरथी गंगा के स्नान के समान परम पुण्य प्राप्त हुआ करता है। माता के अन्दर सभी तीर्थ विराजमान रहा करते हैं और पिता समस्त देवों के समान होता है। अतएव सब कुछ का त्याग करके गुण प्रयत्नों से अपने माता-पिता की पूजा एवं सेवा करनी चाहिए। जो अपने माता-पिता की प्रदक्षिणा करता है उस पुरुष को सात द्वीपों वाले सम्पूर्ण भूमण्डल की परिक्रमा के फल प्राप्त करने का लाभ होता है जिसके घुटने हाथ और शिर अपने माता-पिता को प्रणाम करने के लिए पृथ्वी में गिरते हैं वह कभी न क्षीण होने वाले सुख प्राप्त करते हैं। जिस समय पुत्र अपने माता-पिता के चरणों में भूमि पर शिर रख कर प्रणाम करता है तो उसके मस्तिष्क पर जो रजकण के चिन्ह लग जाते हैं और प्रतीक स्वरूप रहा करते हैं वे यही बतलाते हैं कि उत्तम समय तक के लिए उनका पुत्र पवित्र हो गया है। जो कोई पुत्र अपने माता-पिता के चरणों को धोकर उस जल का पान कर लेता है उसके सैकड़ों करोड़ों जन्मों के संचित हुए भी पाप क्षीण हो जाया करते हैं। ऐसा पुरुष बहुत भाग्यशाली और धन्य है जो इस लोक में अपने माता-पिता की अर्चना तथा भक्ति-भाव समन्वित सेवा के द्वारा सम्मत कल्मषों (पापों) से छुटकारा पाकर पवित्रात्मा बन जाता है।

ऐसा मानव तो पुनः एक ही जन्म में विनायकत्व पद को प्राप्त कर लेता है।"

टिप्पणी—मनुजी भी 'मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २२५ से २३७ तक में माता-पिता की सेवा उत्तम बतलाते हैं।

पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ६२ श्लोक ७८ मं. कहा है—"जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिता के चरण पखारता है, उसे नित्य प्रति गङ्गा स्नान का फल मिलता है।"

(९) धात्री (आँवले) से आयुवृद्धि—

धात्रीफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विश्रुतम्।
अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकल्मषात्।
भक्षणे च भवेदायुः पाने वै धर्मसञ्चयः॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. ६२

अर्थ—धात्रीफल (आँवला) सब लोकों में सबसे अधिक पवित्र फल होता है यही प्रसिद्ध है। इस फल के भक्षणमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। इसके भक्षण करने से आयु की वृद्धि होती है और इसके रस का पान करने से धर्म का संचय होता है।

टिप्पणी—आँवले का फल आयुर्वेद में अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा गया है। 'च्यवनप्राश' नामक रसायन में आँवला ही मुख्य है। आँवला+हर्रे+बहेड़ा (त्रिफला) के पानी से नेत्रों को धोने से ज्योति ठीक रहती है। शरीर में पीलापन, मूत्र-कृच्छ्र, प्रमेह, अम्लपित्त, रक्त-पित्त और वात-रक्त में आँवला अच्छी औषधि का काम देता है। आँवला का मुरब्बा जलपान के लिए उत्तम है, पौष्टिक है। आँवले में कैलशियम की मात्रा अधिक है। इसलिए शरीर के लिए विशेष उपयोगी है।

(१०) शिखा-सूत्र की महिमा—

"कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा॥१०॥

सदोपवीती चैव स्यात्सदा बद्ध शिखो द्विजः ।
अन्यथा यत्कृतं कर्मतद्भवत्ययथा कृतम् ॥११॥"
—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, अ. ५१

अर्थात्—"ब्रह्माजी ने पहिले समय में उपवीत (जनेऊ) के लिए कपास से बने हुए सूत का ही निर्माण वतलाया था। ब्राह्मणों का सूत त्रिवृत (तीन लड़ों वाला) कौश अथवा वस्त्र स्वरूप होता है ॥१०॥ द्विज को सदा ही उपवीत धारण करके ही रहना चाहिए। द्विज की शिखा में भी सर्वदा ग्रन्थि लगी रहनी चाहिए। विना उपवीत धारण किए हुए और शिखा में गाँठ लगाए हुए द्विज जो भी कर्म करता है वह अथवा कृत अर्थात् फलशून्य व्यर्थ ही हो जाया करता है।"

टिप्पणी—वेदादि सच्छास्त्रों में संन्यासी के अतिरिक्त तीनों आश्रमों में शिखा-सूत्र आवश्यक माना गया है।

(११) मूत्र व पुरीष त्याग की विधि—

"निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ् मुखः ।३५॥"
—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, अध्याय ५२

अर्थ—"दक्षिण (दाहिने) कान में ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को रखकर उत्तर की ओर मुखवाला होकर त्याग करना चाहिए ऐसा मलमूत्र के त्याग करने का विधान है।"

"अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ।
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्टतृणेन वा ॥३६॥
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥३७॥
न तिष्ठन्नच निर्वासा न च पर्वतमण्डले ।
न जीर्णदेवायतने वल्मीके न कदाचन ॥३९॥"
—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, अ. ५२

अर्थ—"दिन में मल-मूत्र का त्याग उदंगमुख होकर ही करें और रात्रि में यदि इनका त्याग करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए। भूमि को काष्ठ-पत्र, लोष्ठ अथवा तृण से अन्तर्धाय करके और शिर को ढक कर मल-मूत्र का विसर्जन करना चाहिए। खड़े होकर, नग्न होकर, पर्वतमण्डल में, जीर्ण देवों के स्थान में—सर्प की बाँवी में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।"

टिप्पणी—मनुस्मृति अ. ४ श्लोक ४५ से ५२ तक में इसी प्रकार की विधि दी गई है। पुराणकार ने मनुस्मृति के आधार पर ही लिखा है।

(१२) निखिल धर्म का मूल 'वेद' है—

"वेदा मूलं तु धर्माणां वर्णाश्रम विवेकिनाम् ॥१४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. ८

अर्थ—"सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद ही होते हैं क्योंकि वेद ही तो धर्म का क्या स्वरूप है—यह बतलाते हैं। जिन धर्मों में वर्णों तथा आश्रमों का पूर्ण विवेक भरा होता है।"

टिप्पणी—मनुजी भी कहते हैं—

"वेदोऽखिलो धर्ममूलं............" —मनुस्मृति २।६

अर्थ—सम्पूर्ण वेद धर्ममूल हैं।

(१३) कलियुगी ब्राह्मण कैसे हैं ?

"रक्ताम्बराभविष्यन्ति ब्राह्मणाः शूद्रधर्मिणः।
कलौयास्यन्ति निवृत्ता उत्तमा अति नीचताम् ॥२१॥"

—पद्मपुराण, ७ क्रियायोगसारखण्ड, अ. २६

अर्थ—"शूद्रों जैसा व्यवहार करने वाले ब्राह्मण लाल वस्त्रों को धारण करके इस कलियुग में बहुत उत्तम जन भी अत्यन्त नीच कर्मों में तत्पर रहते हुए निवृत्त हो जायेंगे॥"

टिप्पणी—पुराणकार ने कलियुगी ब्राह्मणों का कच्चाचिट्ठा प्रकाशित कर दिया है। इसी प्रकार 'देवीभागवत पुराण' स्कन्ध ६, अ. ११ में

कलियुगी ब्राह्मणों को पूर्वकाल का राक्षस बतलाया है। इसीलिए पोपगण आर्यसमाज का विरोध करता है।

(१४) नग्ना स्त्री को न देखें—

"न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन।
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् ॥४५॥"
—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, अ. ५५

अर्थ—"नग्ना स्त्री, पुरुष को और न मल-मूत्र त्याग करते हुए और न मैथुन करते हुए को कभी देखें।"

टिप्पणी—राजर्षिमनुजी भी कहते हैं—

"उपेत्य स्नातको विद्वान्नेक्षेन्नग्नां परस्त्रियम्।
सरहस्यं च सेवादं परस्त्रीषु विवर्जयेत्॥"
—मनुस्मृति अ. ४ श्लोक ४४ से आगे※

अर्थ—"विद्वान् स्नातक समीप जाकर नंगी परस्त्री को न देखें और एकान्त में परस्त्री के साथ बातचीत भी न करे।"

"नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत् च स्त्रियम्॥"
—मनुस्मृति ४।५३

अर्थ—"अग्नि को मुख से न फूंके, नंगी स्त्री को न देखें।"

"आच्छिन्नवस्त्रां विवृतां स्त्रियं न पश्येत्॥३०॥"
—वाराह गृह्यसूत्रम् षष्ठः खण्डः

अर्थ—"स्त्री के शरीर पर से बलात्कार वस्त्र हटाकर या नंगी स्त्री को न देखें।"

※ चार पुस्तकों और पं. रामचन्द्र की टीका में अ. ४ श्लोक ४४ से आगे यह श्लोक पाया जाता है—अन्य संस्करणों में नहीं है—(लेखक)

(१५) ईर्ष्या, मद का परिवर्जन—

"ईर्ष्यां मदं तथा शोकं मोहं च परिवर्जयेत् ।
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यं तु ताडयेत् ॥५३॥"

—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, ग्र. ५५

अर्थ—"ईर्ष्या, घमण्ड तथा शोक ग्रौर मोह को त्याग दें। किसी को पीड़ा न दें ग्रौर न पुत्र, शिष्य को ताड़न करें।

(१६) जल छानकर पीना चाहिए—

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥१९॥
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनः पूतं समाचरेत् ॥२०॥"

—पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, ग्र. ५९

अर्थ—"दृष्टि से शोधित (मार्ग में) पैर रक्खे (देखकर चलें) ग्रौर वस्त्र से (छान कर) पवित्र जल पीवें ग्रौर सत्य से पवित्र वाणी को बोले ग्रौर मन से पवित्र ग्राचरण करें।"

टिप्पणी—मनुस्मृति ६।४६ की सत्य प्रतिलिपि है।

(१७) कर्म से ब्राह्मण—

"यथा दारुमयो हस्ती मृगश्चित्रमयो यथा।
विद्याहीनो द्विजो विप्रक्ष्यस्ते नामधारकाः ॥१०॥"

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्ड, ग्र० १६

अर्थ—लकड़ी का हाथी, चित्रमय मृग ग्रौर विद्याहीन (मूर्ख) द्विज ये तीस केवल नाममात्र धारण करते हैं।

टिप्पणी—मनुस्मृति ग्र० २, श्लोक १५७ में—

"यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयोमृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति ॥"

अर्थ—"लकड़ी का हाथी, चमड़े का मृग ग्रौर मूर्ख ब्राह्मण ये तीन केवल नाममात्र धारण करते हैं।"

पुराणकार ने मनुस्मृति २।१५७ के ग्राधार पर ही लिखा है।

(१८) रजस्वला-संभोग का निषेध—

"रजस्वलां न सेवते नाश्नीयात्सह भार्यया।
एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने ॥५४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ९

अर्थ—"रजस्वला से संभोग न करे और स्त्री के साथ भोजन न करें। एक वस्त्र धारण कर भोजन न करें और उत्कट आसन पर (बैठकर) भोजन न करें।"

टिप्पणी—यह श्लोक मनुस्मृति ४।४०, ४१, ४२, ४३ के आधार पर है।

(१९) परमात्मा निराकार, हस्त-पादादि रहित है—

"सर्वत्रासौ समश्चापि वसन्ननुपमो मतः।
भावयन् ब्रह्मरूपेण विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥८७॥

तं गुह्यं परमं नित्यमजमक्षयम व्ययम्।
तथा पुरुष रूपेण कालरूपेण संस्थितम् ॥८८॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० २

अर्थ—"वह सर्वत्र एक रस होकर बसता है और अनुपम है, ब्रह्मरूप से भावना करने वाले विद्वानों द्वारा ऐसा कहा जाता है ॥८७॥ व्यापक, महान्, नित्य, अजन्मा, नाशरहित जिसमें से कभी कुछ घटता नहीं और जो मृत्युरूप तथा सर्वान्तर्यामी रूप से स्थित है, उसको विद्वान् जन ब्रह्म कहते हैं।"

"परः पुराणः परमः परमात्मा पितामहः।
रूपवर्णादि रहितो विशेषण विवर्जितः ॥८५॥

अपक्षय विनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीतिहि केवलम् ॥८६॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० २

अर्थ—"परमात्मा सूक्ष्मों से भी सूक्ष्म पिताओं का भी पिता रूप और रंग से रहित तथा विशेषणों से विवर्जित है ॥८५॥ क्षीणता विनाश परिणाम जन्मादि सर्वगुण रहित है परन्तु उसका भान होता है वह अद्वितीय है।"

"गतिहीनो व्रजेत्सोऽपि स हि सर्वत्र दृश्यते।
पाणिहीनोऽपि गृह्णाति पादहीनः प्रधावति ॥३३॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ० ६२

अर्थ—"वह गतिहीन होने पर भी सर्वत्र गमन करता अर्थात् व्यापक रहता है तथा हाथ रहित होने पर ग्रहण करता है और पैर से रहित होने पर भी दौड़ता है।"

"हस्त पाद विहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति।
सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं पुनः ॥८८॥
नासा मुख विहीनस्तु घ्राति भक्षति भूपते।
अकर्णः शृणुते सर्वं सर्वं साक्षी जगत्पतिः ॥८९॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ० ८४

अर्थ—"वह हाथ और पैरों से रहित ही है और सर्वत्र गमन करता अर्थात् व्यापक रहता है तथा तीनों लोकों एवं चलने और न चलने वाले (प्राणियों) को ग्रहण करता है। विना नाक के सूंघता, बिना मुख के सारे संसार को भक्षण करता है। हे राजन्! वह जगतपति बिना कानों के सुनता है वह सबका साक्षी है।

(२०) शुद्धि-व्यवस्था (चोर की शुद्धि)

(क) संगति—विष्णुमन्दिर के लीपने से सब ही पापों की निवृत्ति पूर्वकाल में द्वापर में दण्डक नाम का चोर जो ब्रह्मस्वहारी, मित्रघ्न, असत्यभाषी, क्रूर, परस्त्रीगामी, गोमांसभक्षी, शरावी, पाखण्डी, द्विजातियों का वृत्तिच्छेदी, न्यासापहारक, शरणागत हन्ता, वैश्याविभ्रमलोलुप था। विष्णु के मन्दिर में धन चुराने गया। पैर में लगे कीचड़ को देवगृह में

पोंछ दिया जिससे कुछ भूमि लिप्त हो गई। मन्दिर में प्रवेश कर विष्णु का पीताम्बर लेकर, उसमें सब माल बाँधकर जाने को तैयार हुआ कि विष्णु की माया से गठरी हाथ से गिर गई और उसके शब्द से लोग जाग उठे, वह भय से भागा। उसे सर्प ने डस लिया और वह मर गया। तब यमदूत उसे पकड़कर ले चले। धर्मराज के पूछने पर चित्रगुप्त ने कहा—

"सृष्टानि यानि पापानि विधात्रापृथिवीतले।
कृतान्यनेन मूढेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२४॥
हरणार्थं हरद्रव्यं गतोऽसौ पापिनांवरः।
प्रोज्झितः कर्द्दमोराजन्यादयोर्द्वारतो हरेः ॥२८॥
बभूव लिप्ता सा भूमिर्विलच्छिद्रविवर्जिता।
तेन पुण्य प्रभावेण निर्गतंपातकं महत्।
वैकुण्ठं प्रतियोग्योऽसौ निर्गतस्तव दण्डतः ॥२९॥
श्रुत्वा सवचनं तस्य पीठं कनकनिर्मितम्।
ददौ तस्मै चोपविष्टस्तत्र पूज्यो यमेन सः ॥३०॥
पवित्रं मन्दिरं मेऽद्य पादयोस्तव रेणुभिः।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥३१॥
इदानीं गच्छ भो साधो! हरेर्मन्दिरमुत्तमम्।
नानाभोगसमायुक्तं जन्ममृत्यु निवारणम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा धर्मराजोऽसौ स्यन्दने स्वर्णनिर्मिते।
राजहंसयुते दिव्ये तमासेप्य गतंनसम् ॥३३॥
समस्त सुखदं स्थानं प्रेषयामास चक्रिणः।
एवं प्रविष्टो वैकुण्ठे तत्र तस्थौसुखंचिरम् ॥३४॥
लेपनं ये प्रकुर्वन्ति भक्त्या तु हरिमन्दिरे।
तेषां किं वा भविष्यति न जाने ऽहं द्विजोत्तम ॥३५॥"

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्ड, अ० २

अर्थ—(चित्रगुप्त ने कहा) "संसार में विधाता (ब्रह्मा) ने जितने पाप बनाए हैं उन सब पापों को इसने किया है यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। विष्णु का द्रव्य हरण करने के लिए वह गया और पैर में लगे कीचड़ को विष्णुमन्दिर के द्वार पर पोंछ दिया जिससे बिल और छिद्र मूंद गए। उस पुण्य के प्रभाव से इसका सब पाप नाश हो गया। अब यह दण्ड से बाहर है और वैकुण्ठ जाने के योग्य हो गया। (व्यास ने कहा) उसकी बात सुनकर यम ने कहा सुवर्णनिर्मित आसन दिया। उस पर वह बैठा और यम ने उसकी पूजा की। (यम ने कहा) आज तुम्हारे चरण की धूलि से मेरा मन्दिर पवित्र हुआ। मैं कृतार्थ हो गया इसमें संशय नहीं है। हे साधो! अब तुम विष्णुलोक को जाओ। वह नाना प्रकार के भोग से युक्त और जन्म व मृत्यु को निवारण करने वाला है। यह कहकर धर्मराज ने सुवर्णनिर्मित रथ पर चढ़ाकर विष्णुलोक उसे भेज दिया जो समस्त सुख देने वाला स्थान है। जब इस प्रकार अनजान में पैर पोंछ देने से ऐसा चोर बैकुण्ठ चला गया तो जो भक्ति के साथ हरि मन्दिर का लेपन करते हैं उनकी क्या गति होगी मैं नही कह सकता।"

(ख) गणिका की शुद्धि—संगति—एक गणिका थी। वह एक बार किसी देवालय में चली गई। वहाँ पान खाने के बाद चूने को भीत पर उसने पोत दिया जिसके प्रभाव से वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर मरने के बाद वैकुण्ठ को चली गई।

चित्रगुप्त धर्मराज से कहते हैं—

"तया पापान्यर्जितानि जन्मतः सुबहून्यपि।
किंत्वाकर्णय लोकेशः यदस्याः पुण्यमस्तितत्।
गणिकैकदा धर्मराज सर्वालङ्कारभूषिता।
काञ्चित्पुरीं जगामाशु जारकामा धनार्थिनी।
तत्र देवालये तस्मिन्स्थित्वा ताम्बूल भक्षणम्।
कृत्वा तच्छेषचूर्णं तु ददौभित्तौ तु कौतुकात् ॥३१॥

तेन पुण्य प्रभावेण गणिका गतपातका ।
वैकुण्ठं प्रति सा याति निर्गता तव दण्डतः ॥३२॥

भक्त्या यो वै हरेर्गेहे दद्याच्चूर्णं प्रयत्नतः ।
पुण्यं किं वा भवेत्तस्य न जाने द्विजपुङ्गव ॥३६॥"

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्ड, अ० ६

अर्थ—"इसने बहुत जन्मों से बड़ा पाप किया था। एक दिन यह धन की इच्छा से जार को खोजती हुई किसी नगरी में गई। वहाँ के देवालय में ठहरी और पान खाकर दीवाल में लगा दिया। बस इससे उसका सब पाप नष्ट हो गया और वह यमदण्ड से मुक्त होकर वैकुण्ठ की अधिकारिणी बन गई। जब पान का चूना जरा सा दीवाल में पोत देने से पाप से छुटकारा हो गया और अन्त में वैकुण्ठ मिला।

(ग) लीलावती वेश्या की शुद्धि—(राधाष्टमी व्रत से गोहत्यादि पातकों की निवृत्ति)—

एक बार एक लीलावती नाम की वेश्या किसी नगर में गई और स्त्रियों को राधाकृष्ण के मन्दिर में राधा की पूजा करते हुए देखकर पूछा कि तुम लोग क्या कर रही हो तब व्रत रखने वाली बोली—

"गोघात जनितं पापंस्तेयजं ब्रह्मघातजम् ।
परस्त्रीहरणाच्चैव तथा च गुरुतल्पजम् ॥२३॥

विश्वासघातजं चैव स्त्रीहत्याजनितं तथा ।
एतानि नाशयत्याशु कृताया चाष्टमीनृणाम् ॥२४॥"

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्ड, अध्याय ७

अर्थ—"गोहत्या, चोरी, ब्रह्महत्या, परस्त्रीहरण, गुरुस्त्रीगमन, विश्वासघात, स्त्री हत्या आदि से उत्पन्न पाप को यह व्रत नाश करता है।"

यह सुनकर उसने राधाष्टमी का व्रत किया। उसके पाप दूर हो गए और वह मरने पर स्वर्गलोक को गई।

(घ) ब्राह्मण के चरणामृत से शुद्धि—

"नश्यन्ति सर्वं पापानिद्विजहत्यादिकानि च।
कणमात्रंपिवेद्यस्तुविप्राङ्घ्रिसलिलंनरः ।
यो नरश्चरणौ धौतौ कुर्याद्धस्तेन भक्तितः।
द्विजातेर्वच्मि सत्यंते स मुक्तः सर्वपातकैः ॥१०॥"

—पद्मपुराण, ४ ब्रह्मखण्ड, अध्याय १४

अर्थ—"जो ब्राह्मण के चरण कणमात्र जल को ग्रहण करता है उसके ब्रह्महत्यादि सब पाप नाश हो जाते हैं। जो मनुष्य द्विज के दोनों चरणों को भक्तिपूर्वक धोवे तो मैं सत्य कहता हूँ कि वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।"

(ङ) ब्रह्महत्यारे गौतम की भार्या से संभोग करने वाले देवराज की शुद्धि—

"कुञ्जल उवाच।

ब्रह्महत्याभिभूतस्तु सहस्राक्षो यदापुरा।
गौतमस्य प्रियासङ्गादगवाम्यागमनं महत्॥

सञ्जातं पातकं तस्य व्यक्तो देवैश्च ब्राह्मणैः।
सहस्राक्षस्तपस्तेपे निरालम्बो निराश्रयः ॥२॥

तपोऽन्ते देवताः सर्वा ऋषयो यक्ष किन्नराः।
देवराजस्य पूजार्थमभिषेकं प्रचक्रिरे ॥

देश मालवकं नीत्वा देवराजं सुतोत्तम।
चक्रे स्नानं महाभाग कुम्भैरुदक पूरितैः ॥४॥

स्नापितुं प्रथमं नीतो वाराणस्यां स्वयं ततः।
प्रयागे तु सहस्राक्ष अर्धतीर्थे ततः पुनः

पुष्करेण महात्माऽसौ स्नापितः स्वयमेव हि।
ब्रह्मादिभिः सुरैः सर्वैर्मुनिवृन्दैर्द्विजोत्तम ॥६॥

नागैर्वृक्षैर्नागसर्पैर्गन्धर्वैस्तु सकिन्नरैः ।
स्नापितो देवराजस्तु वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतः ॥

मुनिभिः सर्वं पपाघ्नै तस्मिन्काले द्विजोत्तम ।
शुद्धे तस्मिन्महाभागे सहस्राक्षे महात्मनि ॥८॥

ब्रह्महत्यागता तस्य अगम्यागमनं तथा ।
ब्रह्महत्या ततो नष्टा अगम्यागमनेन च ॥९॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय ९१

अर्थ—"कुञ्जल ने कहा—जब इन्द्र ने ब्रह्महत्या की और गौतम की स्त्री से संसर्ग कर व्यभिचार किया। उसको महापातक हुआ और देवता व ब्राह्मणों ने उसको त्याग दिया। आश्रयरहित सहस्राक्ष (इन्द्र) तप करने लगा। तप करने के पश्चात् देवता, ऋषिगण, यक्ष, किन्नरों ने इन्द्र को पूजार्थ अभिषेक के लिए मालवक देश में ले जाकर महाभाग इन्द्र को जल से भरे कलशों से स्नान कराया। हे द्विजश्रेष्ठ! प्रथम तो इन्द्र स्वयं ही वाराणसी में स्नान करने के लिए गया, उसके बाद प्रयाग में और पुनः अर्घतीर्थ में गया। पुनः ब्रह्मादिदेव तथा ऋषि मुनियों से प्रेरित हो पुष्कर में स्नान करने के लिए गया। गन्धर्व, किन्नर आदि ने तथा समस्त पापों को नाश करने वाले मुनियों ने वेदमन्त्रों से नाग वृक्ष आदि सर्वोषधि द्वारा इन्द्र को स्नान कराया। इस प्रकार महात्मा इन्द्र को शुद्ध करने पर ब्रह्म-हत्या का पाप और व्यभिचार का दोष दूर हुआ।"

(च) चन्द्रशर्मा आदि चार महापातकियों को शुद्धि—

"अस्ति पञ्चालदेशेषु विदुरो नाम क्षत्रियः ।
तेन मोह प्रसङ्गेन ब्रह्मणे निहतः पुरा ॥१८॥
शिखासूत्र विहीनस्तु तिलकेन विवर्जितः ।
भिक्षार्थमट तेसोऽपि ब्रह्मघ्नोऽहं समागतः ।
ब्रह्मघ्नाय सुरापाय भिक्षाचान्नं प्रदीयताम् ।
गृहेष्वेवं समस्तेषु भ्रमते याचते पुरा ॥

एवं सर्वेषुतीर्थेषु अटित्वैव समागतः ।
ब्रह्महत्या न तस्यापि प्रयाति द्विजसत्तम ॥२१॥

वृक्षच्छायां समाश्रित्य दह्यमानेन चेतसा ।
संस्थितो विदुरः पापो दुःखशोक समन्वितः ।

चन्द्रशर्मा ततो विप्रो महामोहेन पीडितः ।
न्यवसन्मागधेदेशे गुरुघातकरश्च सः ॥२३॥

स्वजनैर्बन्धुवर्गेश्च संत्यक्तो धार्मिकैः पुनः ।
स हि तत्र समायातोय त्रासौ विदुरः स्थितः ।

शिखासूत्र विहीनस्तु विप्र लिङ्गै विर्वजितः ।
तदासौ पृच्छितस्तेन विदुरेण दुरात्मना ॥२५॥

भवान्कोहि समायातो दुर्भगो दुग्ध मानसः ।
विप्रलिङ्गविहीनस्तु कस्मात्त्वं भ्रमसे महीम् ॥२६॥

विदुरेणोक्त मात्रस्तु चन्द्रशर्मा द्विजाधमः ।
आचष्टे सर्वमेवापि यथा पूर्वकृतं स्वकम् ॥

पातकं च महाघोरं वसता चगुरोर्गृहे ।
महामोहगतेनापि क्रोधेनाकुलितेन च ॥२८॥

गुरोर्घातः कृतः पूर्वं तेनदग्धोऽस्मि साम्प्रतम् ।
चन्द्रशर्मा च वृत्तान्तमुक्त्वा सर्वमपृच्छत ॥२९॥

भवान्कोहि सुदुःखात्मा वृक्षच्छायां समाश्रितः ।
विदुरेण समासेन आत्मपापं निवेदितम् ॥३०॥

अथकश्चिद् द्विजः प्राप्तस्तृतीयः श्रमकर्षितः।
वेदशर्मेति वै नाम .बहुपातकसञ्चयः ॥३१॥

द्वाभ्यामपि सुसम्पृष्टः कोभवान्दुः खिताकृतिः ।
कस्माद् भ्रमसि वै पृथ्वीं वदभावं त्वमात्मनः ॥३२॥

वेदशर्मा ततः सर्वमात्मचेष्टि तमेव च ।
कथयामास ताभ्यां वै ह्यागम्यागमनं कृतम् ॥
धिक्कृतः सर्वलोकैश्च अन्यैः स्वजन बान्धवैः ।
तेन पापेन संलिप्तो भ्रमाम्येवं महीमिमाम् ।
वञ्जुलोनाम वैश्योऽथ सुरापायी समागतः ।
स गोघ्नश्च विशेषेण तैश्च पृष्टो यथापुरा ।
तेन आवेदितं सर्वं पातकं यत्पुराकृतम् ।
तैराकर्णितमन्यैश्य सर्वंतस्य प्रभाषितम् ॥३६॥
एवं चत्वारः पापिष्ठा एक स्थानं समागताः ॥३७॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय ९१

अर्थ—"(कुञ्जल बोला) पाञ्चाल (पंजाब) देश में एक विदुर नाम वाला क्षत्रिय रहता था। उसने मोहवश ब्रह्महत्या कर दी। तब वह शिखा-सूत्र तथा तिलक से रहित भिक्षा के लिए घरों में जाता और कहता था मैं ब्रह्मघाती तथा शरावी हूँ, मुझे भिक्षा दीजिए। इस प्रकार ब्रह्मघाती विदुर समस्त तीर्थों पर घूमता फिरता था, तब भी उसकी ब्रह्महत्या दूर न हुई तब शोक और दुःख से व्याकुल पापी विदुर दग्धचित्त से वृहच्छाया का आश्रय लेकर बैठ गया। मगध देश निवासी गुरुघात करने वाला अपने भाई-बन्धुओं से पृथक् किया हुआ मोह से दुःखी दुष्ट चन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण वहीं पर आ गया जहाँ विदुर बैठा हुआ था। दुरात्मा उस विदुर क्षत्रिय ने इस चन्द्रशर्मा ब्राह्मण से पूछा कि आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं और ब्राह्मणों के चिह्नों से रहित आप किस कारण से भूमि का भ्रमण करते फिरते हैं। विदुर के पूछने पर द्विजाधम चन्द्रशर्मा कहने लगा कि गुरु के घर में रहते हुए क्रोधातुर, मोह से व्याकुल मैंने गुरु को मारकर महापाप किया। इसलिए दुःखी हुआ फिरता हूँ। इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहकर विदुर से सब समाचार पूछने लगा कि आप कौन हैं और यहाँ दुःखित हृदय से वृक्ष की छाया में क्यों बैठे हैं? तब विदुर ने भी अपना

किया हुआ समस्त पाप कह सुनाया। इसके बाद थका हुआ महापापी वेद शर्मा नामक ब्राह्मण वहाँ आया और दोनों ने पूछा कि आप कौन हैं और आपका शरीर दुःखी-सा प्रतीत होता है। आप पृथ्वी पर क्यों भ्रमण करते हैं ? अपने समस्त भावों को आप कहें। उस समय वेदशर्मा ने अपने किए हुए समस्त पाप कह सुनाए कि मैंने व्यभिचार किया। अतः लोगों ने फटकार कर बाहर निकाल दिया, इसलिए उस पाप से लिप्त हुआ भूमि पर घूमता फिरता हूँ। इसके बाद मंजुल नामक एक वैश्य आया जो शराबी था और जिसने गोहत्या का पाप भी किया था, तब उन तीनों ने उससे वृत्तान्त पूछा और उसने अपनी कहानी सुनाई। इस प्रकार वे चारों पापी वहाँ एक स्थान पर एकत्रित हुए।"

" तत्र कश्चित्समायातः सिद्धश्चैव महायशाः।
तेन पृष्टाः सुदुःखार्ता भवन्तः केनदुःखिताः।

स तैः प्रोक्तो महाप्राज्ञः सर्वज्ञान विशारदः।
तेषां ज्ञात्वा महापापं कृपांचक्रे सुपुण्यभाक् ॥३॥

सिद्ध उवाच।

अमासोम समायोगे प्रयागः पुष्करश्च यः।
अर्घतीर्थं तृतीयं तु वाराणसी चतुर्थिका॥

गच्छन्तु तत्र वै यूयं चत्वारः पातकाविलाः।
गङ्गाम्भसियदास्नातास्तदामुक्ता भविष्यथ।

पातकेभ्यो न सन्देहो निर्मलत्वं गमिष्यथ।
आदिष्टास्तेन वै सर्वे प्रणेमुस्तं प्रयत्नतः॥६॥

तस्मिन्पर्वणि सम्प्राप्ते स्नाता गङ्गाम्भसि द्विज।
स्नान मात्रेण मुक्तास्तु गोवधाद्यैश्च किल्विषैः॥१०॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय, ९२

अर्थ—"इतने ही में कोई यशस्वी सिद्ध वहाँ आया और उसने उन

चारों से दुःख का कारण पूछा कि आप किस दुःख से दुःखी हैं। समस्त ज्ञान में कुशल उस बुद्धिमान् सिद्ध से सब हाल कहा। उनके समस्त पापों को जानकर शुद्ध करने की इच्छा से उन पर कृपा कर उपाय बताया। सिद्ध बोले कि तुम चारों पातकी सोमवती अमावस्या को पुष्कर, प्रयाग, अर्घतीर्थ और वाराणसी में जाओ और वहाँ जाकर जब तुम गंगा में स्नान करोगे तब अवश्य ही उन पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाओगे तब उन्होंने उस सिद्ध को प्रणाम किया और कालञ्जर वन से चलकर वाराणसी आदि होते हुए वे चारों पापी इस पर्व में गंगा में स्नान किए और स्नानमात्र से वे गोवधादि के पापों से मुक्त हो गए।"

(छ) "सर्वेऽधिकारिणश्चात्र चाण्डालान्ता मुनीश्वर। स्त्रिय शूद्रादयश्चापि जडमूकादिपङ्गवः। अन्येहूणाः किराताश्च पुलिन्दाः पुष्कसास्तथा। आभीरा यवनाः कङ्काः खसाद्याः पापयोनयः ॥२०॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ, ८१

अर्थ—"शिवजी कहते हैं कि कृष्ण नाम का चाण्डाल, स्त्री, शूद्र, जड़, मूक, अन्यहूण, किरात, पुलिन्द, पुष्कस, आभीर यवन, कङ्क, खस आदि पापयोनि सभी अधिकारी हैं।"

यहाँ तो कृष्ण नाम के सभी अधिकारी कहे हैं। अतः पुराण के अनुसार कृष्ण नाम से इनकी शुद्धि हो सकती है।

(२१) पुराण पथ-भ्रष्ट करने वाले हैं—

"स्मुर्मोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमास्तां
तामेवहि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पे विधौ।

सिद्धान्ते पुनरेक एम भगवान्विष्णुः समस्तागम—
व्यापारेषु विवेकिनां व्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥२७॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय ९७

अर्थ—"ये सब पुराणशास्त्र जगत् को विशेष मोह में फंसाने वाले हैं

ये उस-उस देव (जिसकी कल्पना कर लेते हैं) की महिमा में ही कल्प तक बकते रहते हैं।

सिद्धान्त में तो फिर एक भगवान् विष्णु को ही सर्व शास्त्रों और व्यापारों आदि में विवेकियों द्वारा निश्चय किया जाता है।"

टिप्पणी—जब स्वयं पुराण कहता है कि पुराणशास्त्र पथभ्रष्ट करने वाले और विशेष मोह में फंसाने वाले हैं। तब वेदों को ही मानना चाहिए।

(२२) त्रिदेवों में कोई भेद नहीं है—

"शिवे विष्णौन वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः।
तेषां पादरजः पूतं वहाम्यघ विनाशनम् ॥६९॥

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अ. १०

अर्थ—"शिव व विष्णु में और ब्रह्म व महेश में कोई भेद नहीं है। उनकी चरण-धूलि पाप को नाश कर पवित्र करती है।"

टिप्पणी—पुराणों में परस्पर विरोध है। यहाँ उपर्युक्त श्लोक में त्रिदेवों में भेद नहीं माना है परन्तु—

"यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः।
समत्वे नैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय २३५

अर्थ—"जो विष्णु को ब्रह्मा और रुद्रादि देवों के समान समझता है, वह सदा पाखण्डी है।"

यहाँ 'वदतो व्याघात दोष' है।

(२३) शिवनिर्माल्य भोजन निषिद्ध है

'सकृदेवहि योऽश्नाति ब्राह्मणो ज्ञान दुर्बलः।
निर्माल्यं शङ्करादीनां सचाण्डालो भवेद्ध्रुवम् ॥१०५॥'

कल्पकोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निना।
निर्माल्यंभोद्विजश्रेष्ठा रुद्रादीनांदिवौकसाम् ॥१०६॥

रक्षोयक्ष पिशाचान्नं मद्यमांससमं स्मृतम्।
तद् ब्राह्मणैर्न भोक्तव्यं देवानामर्पितं हविः ॥१०७॥'

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय, २५५

अर्थ—"जो ज्ञान से दुर्बल ब्राह्मण शिवजी आदि के चढ़ावे का भोजन एक बार भी कर ले तो वह उसी समय निश्चय चाण्डल हो जाता है। वह करोड़ों सहस्र कल्प नरक की अग्नि से पकता है। शिवजी आदि का चढ़ावा यक्ष, राक्षस, पिशाचों के भोजन और मद्य-मांस के समान है। उनको ब्राह्मणों को देवों के अर्पित हवि को भोजन न करना चाहिए।"

"अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं तथा।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिक्षिपेत् ॥२०४॥"

—पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय ११४

अर्थ—"(शिवजी कहते हैं) मेरे नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल कोई भी ग्रहण करने योग्य नहीं है। मेरे ऊपर चढ़ावा हुआ नैवेद्य कुंए में फेंक दो।"

(२४) दुष्ट विचार से गंगाजल द्वारा शुद्धि नहीं—

"गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गात्र लेपनैः ॥८३॥
मर्त्यो दुर्गन्ध देहोऽसौभाव दुष्टोन शुध्यति।
तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शुध्यति ॥८४॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय ६६

अर्थ—गङ्गाजल से व गंगा की मृतिका से शरीर लेप करे, मृत्यु पर्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्टस्वभाव और दुष्टात्मा मनुष्य शुद्ध नहीं होता।

(२५) 'धूमपान-निषेध'

"धूमपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥"

—पद्मपुराण, अध्याय २२[५८]

अर्थ—"तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को जो दान है, वह दानदाता नरक में जाता है और दान लेने वाला वह ब्राह्मण मर कर ग्राम का सूअर बनता है ।"

यह प्रमाण पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ[५९] पं. सुखदेवजी विद्यावाचस्पति, दर्शनभूषण,[६०] श्रीचिम्मनलाल वैश्य[६१] ने भी दिया है ।

श्री माधवाचार्य शास्त्री का आक्षेप—महाशय लेखराम म. चिम्मनलाल और उनके अनुयायी किसी भी समाजी ने उक्त दोनों श्लोकों का पूरा पता नहीं लिखा । हमारे यथासाध्य खोज करने पर भी उक्त पुराणों में इन श्लोकों का कहीं पता नहीं मिल सका····· ।

असल बात यह है कि उपर्युक्त आक्षेप का जन्मदाता म. लेखराम संस्कृत भाषा का 'काला अक्षर-भैंस बराबर' समझता था इसीलिए उसे

---

५८. पं. लेखरामजी आर्य मुसाफ़िर कृत 'कुलियात आर्य मुसाफ़िर' (हिन्दी अनुवाद) आर्य पथिक ग्रन्थमाला, पहला भाग, पृष्ठ १११, (प्रथम संस्करण, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर द्वारा प्रकाशित)

५९. "पुराणमत-पर्यालोचन" पृष्ठ ५२७.

६०. "पुराण-रहस्य" पृष्ठ १०८ (सन् १९३६ ई. में श्री तुलसीराम 'विशारद' १९, कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

६१. "पुराण-तत्त्व-प्रकाश" प्रथम भाग, पृष्ठ ८ (सन् १९०९ ई. में आर्यभास्कर यन्त्रालय, आगरा में मुद्रित, प्रथम संस्करण)

इन मिथ्या श्लोकों के आधार पर मनमानी लिखते लाज न आई।.... '[६२]

समीक्षा--यद्यपि कलकत्ता व पूना संस्करण में मुझे यह श्लोक नहीं मिला, परन्तु कोई भी पौराणिक इसे पुराण का श्लोक न कहने का साहस नहीं कर सकता है, क्योंकि पुराणों के भिन्न-भिन्न संस्करणों में श्लोकों का हेर-फेर व मिलावट है। स्वयं श्रीमाधवाचार्य व श्री कालूराम और पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यावारिधि मानते हैं।

यदि पं लेखरामजी को संस्कृत भाषा नहीं आती थी तो उन्होंने श्लोक बना कैसे लिया ? उन्हें 'पद्मपुराण के किसी संस्करण में यह श्लोक मिला होगा तो भी उन्होंने लिखा है अन्यथा उन्हें लिखने की क्या आवश्यकता पड़ी थी ?'

स्वयं सनातनधर्मी भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा ने इस श्लोक को उद्धत करते हुए (पुराण) लिखा है।[६३] यदि पुराण का श्लोक नहीं था तो भक्तजी ने कैसे लिखा ? क्या ये भी संस्कृत के 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही हैं ? अतः इस श्लोक का पूरा उत्तरदायित्व पौराणिकों व उनके पुराण पर है।

पुराणकार ने तो तम्बाकू पीने के दोष का वर्णन करके अच्छा ही किया है जिससे जनता इसके पिण्ड से छुटकारा पा जाय। धूम्रपान से कोई लाभ तो है नहीं। आज बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी इसकी बुराई करते और अनेक रोगों की उत्पत्ति इससे मानते हैं।

अतः श्रीमाधवाचार्य ने जो आक्षेप आर्य विद्वानों पर किया है वही उनके सनातनधर्मी विद्वान् भक्तजी पर हो सकता है।

---

६२. "पुराण-दिग्दर्शन" पृष्ठ १२५-१२६.

६३. 'सब पापों की जड़ चाय-तम्बाकू' पृष्ठ १५८ (अगस्त १९५४ ई. में मंत्री श्री सनातनधर्म प्रकाशन मण्डल, पिलखुवा जि. मेरठ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, विश्व भारती प्रेस, हापुड़ में मुद्रित)

(२६) गाय के गोबर में लक्ष्मी का वास

"गोभये वसते लक्ष्मीर्गोमूत्रे सर्वमङ्गला ॥१६२॥
गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः ।
अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥१६४॥
गवांरजः खुरोद् भूतं शिरसा यस्तु धारयेत् ।
स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमूच्यते ॥१६५॥

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, गोमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः (५०वाँ अध्याय)

अर्थ—गोबर में लक्ष्मी का वास है और गोमूत्र सब मंगलप्रद है। नित्य स्नान कर जो गाय को स्पर्श करता है वह सर्वोत्तम पुष्टि को प्राप्त करता है और सब पापों से मुक्त हो जाता है। गाय के खुर से उड़ी हुई धूलि को मस्तक पर धारण करने वाला मनुष्य भी सारे तीर्थों के जल में स्नान करने वाला समझा जाता है और वह भी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

टिप्पणी—महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' दशम-समुल्लास में गाय के गोबर से चौका लगाने के लिए लिखा है। इस पर विद्यावारिधि पं. ज्वाला प्र. मिश्र ने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' में आक्षेप किया है जब महर्षिजी के लेखका समर्थन इनका 'पुराण' ही कर रहा है।

पाश्चात्य विद्वानों की खोज—इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. जी. ई. वीगेंड ने गोबर के अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि ताजे गोबर से तपेदिक और मलेरिया के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं ''।

डॉ. मैकफर्सन ने दो वर्ष तक गोबर का सशोधन कर उसका इति-वृत्त न्यूयार्क टाइम्स में छपाया है। उसमें अनेक सिद्धान्त स्थिर कर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गोबर से बढ़कर जीवाणुनाशक कोई दूसरा उपयुक्त द्रव्य नहीं है''''※

※ मासिक पत्र "कल्याण" गोरखपुर का "गो-अङ्क" वर्ष २०, अक्टूबर १९४५ ई० संख्या १, पृष्ठ ४३०-४३१।

(२७) शिव भक्त पाखण्डी व वेद-विरोधी हैं

"नारीसङ्गम मत्तोऽसौ यस्मान्मामव मन्यते।
योनिलिङ्ग स्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति ॥३३॥

रुद्र भक्ताश्च ये लोके भस्मलिङ्गास्थि धारिणः।
ते पाखण्डत्वमापन्ना वेदवाह्या भवन्तु वै ॥३६॥"

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय २५५

अर्थ—"नारी के संगम में लगा हुआ शिव मेरा आदेश नहीं मानता है इसलिए उसका स्वरूप 'योनिलिङ्ग' होगा। जो संसार में शिव के भक्त हैं, तथा लिङ्ग, अस्थि व भस्म धारण करते हैं, वे पाखण्डी व वेद-विरोधी हैं।"

शैव मत पाखण्ड

पार्वती ने शिव से पूछा कि पाखण्डियों का लक्षण क्या है? वे कैसे पहचाने जाते हैं, तव शिव ने कहा—

"येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्य ज्ञान मोहिताः।
नारायणाज्जगनाथात्ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ॥३॥

कपाल भस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिङ्गिनः।
ऋते वनस्थाश्रमाच्चजटावल्कल धारिणः ॥५॥

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वे नैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥११॥

किमंत्र वहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्य वैष्णवाः।
न स्प्रष्टव्यान वक्तव्या न द्रष्टव्याः कदाचन ॥१३॥"

अर्थ—जो लोग अज्ञान से मोहित होकर नारायण विष्णु से दूसरे देवताओं को श्रेष्ठ मानते हैं वे पाखण्डी हैं। जो कपाल भस्म हड्डी आदि

धारण करते हैं, वानप्रस्थियों को छोड़कर जो जटा और वल्कल धारण करते हैं जो नारायण को ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं को बराबर समझते हैं वे सब पाखण्डी हैं। बहुत क्या कहें जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं उसे न तो छूना चाहिए। न तो उससे बोलना चाहिये और न तो उसे देखना चाहिये। यह सुनकर पार्वती ने पूछा—

"कपाल भस्म चर्मास्थिधारणं श्रुतिगर्हितम्।
तत्त्वया धार्यते देव ! गर्हितं केन हेतुना ॥

अर्थ—"कपाल भस्म चर्म अस्थि का धारण करना यदि वेदविरुद्ध है तो किस कारण से आप उस निन्दित चर्मास्थिा को धारण करते हैं ?"

इस पर शिवजी ने कहा—

"नमुच्याद्या महादैत्याः पुरास्वायम्भुवेऽन्तरे।
महाबला महावीर्या महावीय महौजसः ॥
सर्वे विष्णुरताः शुद्धाः सर्व पाप विवर्जिताः।
त्रयी धर्मवृताः सर्वे भजवद्भक्ति संयुताः ॥
ततो देवगणास्सर्वे भग्ना इन्द्रपुरोगमाः।
विष्णोः समीपमागम्य भयार्त्ताः शरणं गताः ॥२४॥"

अर्थ—"स्वायम्भुवान्तर में नमुचि आदि बड़े महाबलवान्, कीर्तिवान् दैत्य हुए। सब विष्णु से प्रेम करने वाले, शुद्ध, सब पाप से रहित, त्रयीधर्म से आवृत (वेद धर्मयुक्त) और सभी भगवद्भक्त थे। इनको मारने के लिए देवगण भयभीत होकर शरणागत हो विष्णु के समीप गए।"

विष्णु ने मुझसे कहा—

"त्वं हि रुद्र महाबाहो ! मोहनार्थे सुरद्विषाम्।
पाषण्डाचरणं धर्म कुरुष्व सुरसत्तम् ॥२८॥"

तामसानि पुराणांनि कथयस्व च तान्प्रति।
मोहनानिच शास्त्राणिं कुरुष्व च महामते ! ॥२९॥

कपाल चर्म भस्मास्थि चिन्हान्यमर सर्वशः ।
त्वमेव धृत्वा ताँल्लोकान्मोहयस्व जगत्रये ॥३५॥

तथा पाशुपतं शास्त्रं त्वमेव कुरु सत्कृतः ।
कङ्कालं शैव पाषण्ड माहशैवादि भदेतः ॥३६॥

अलक्ष्यं चमतं सम्यग्वेदवाह्यं नराधमाः ।
भस्मास्थिधारिणः सर्वे भविष्यन्तिह्य चेतसः ॥३७॥

त्वां परत्वेन वक्ष्यन्ति सर्वं शास्त्रेषु तामसा ।
तेषाँ मतमधिष्ठाय सर्वेदैत्याः सदानवाः ॥३८॥

भवेयुस्ते मद्विमुखाः क्षणादेव न संशयः ।
अहमप्यवतारेषु त्वां च रुद्र ! महाबल ! ॥३९॥

तामसानां मोहनार्थं पूजयामि युगेयुगे ।
मतमेतदवष्टम्य पतन्त्येव न संशयः ॥४०॥

अर्थ—"हे रुद्र देवताओं के विरोधियों को अज्ञानी बनाने के लिए तुम, पाखण्ड धर्म को धारण करो । उन्हें तामस पुराण वतलाओ । उनकी अज्ञानी बनाने वाले शास्त्रों को बनाओ । तुम कपाल चर्म अस्थि धारण करके सबको अज्ञानी बना दो । पाशुपात शास्त्र बनाओ । नीच ब्राह्मण वेद बाह्य इस मत को अच्छा समझ कर भस्म अस्थि चर्म आदि धारण करेंगे और सब तामस शास्त्रों में तुम्हीं को सबसे बड़ा कहेंगे । सब सनातनी दैत्य लोग उनके मत को मान कर मेरे विमुख हो जावेंगे । इस मत के मानने वाले अवश्य पतित हो जाते हैं ।

यह सुनकर मैं बहुत उदास हुआ और नमस्कार करके विष्णु से मैंने कहा—हे देव ! यदि मैं ऐसा करूँगा तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा । इसलिए मैं ऐसा न करूँगा तब विष्णु ने कहा कि तुम "श्री रामाय नमः" इस मन्त्र का जप करते रहोगे तो तुम्हें पाप न लगेगा ।

"इमंमन्त्रं जपन्निप्यममलस्त्वं भविष्यसि ।
भस्मास्थि धारणाद्यत्रु सभ्भूतं किल्विषं त्वयि ॥५१॥"

भस्म चर्मादि धारण करने से जो पाप होगा, वह सब इस मन्त्र के जप से नष्ट हो जायगा । जाइए देवताओं का काम कीजिए । यह सुनकर शिवजी चले गए । वे अपनी करतूत स्वयं पार्वतीजी से कहते हैं—

"देवतानां हितार्थाय वृत्तिं पाखण्डिनां शुभे !
कपाल चर्म भस्मास्थि धारणं तत्कृतंमया ।।
तामसानि पुराणानि यथोक्तं विष्णुना शुभे ।
पाषण्ड शैव शास्त्राणि यथोक्तंकृत वानहम् ।।
मच्छक्त्याऽपि समाविश्य गौतमादिद्विजानपि ।
वेदवाह्यानिशास्त्राणि सम्यगुक्तंमयाऽनघे ।।
इमं मतमवष्टम्य दुष्टाः सर्वे च राक्षसाः ।
भगवद्विमुखाः सर्वे बभूवुस्तमसावृताः ।।६०।।
भस्मादिधारणं कृत्वा महोग्रतमसावृताः ।
मामेव पूजयाञ्जक्रुर्मांसासृक्चन्दनादिभिः ।।
मत्तो वरप्रदानानि लब्ध्वा मदवलोद्धताः ।
अत्यन्त विषयासक्ताः कामक्रोधसमन्विताः ।।
सत्त्वहीनास्तु निर्वीर्याजिता देव गणैस्तदा ।
सर्वधर्म परिभ्रष्टाः कालेयान्त्यधमांगतिम् ।।६३।।"

—[पद्मपुराण ६, उत्तरखण्ड, अध्याय २३५]

अर्थ—"हे देवी ! देवताओं के हित के लिए पाखण्डियों को वृत्ति मैंने स्वीकार की और भस्मादि धारण किया । तामस पुराण और पाखण्ड शैव शास्त्र बनाया । मैंने अपनी शक्ति से गौतमादिद्विजों में प्रवेश करके वेदवाह्य शास्त्रों को कहा । इस मत को स्वीकार करके राक्षस ईश्वर से विमुख तामसावृत्त भस्मादि धारण करके मांस रुधिर और चन्दनादि से मेरी पूजा करने लगे । अत्यन्त विषयासक्त और काम क्रोध से युक्त व सत्वहीन निर्वीर्य हो देवों से जीते जावें । सारे धर्मों से भ्रष्ट होकर समय अधम गति को प्राप्त हों ।"

इसके बाद पार्वतीजी ने पूछा—

"तामसानि च शास्त्राणिसमाचक्ष्व ममाऽनघ !
सम्प्रोक्तानिच यैर्विप्रै र्भगवद्भक्तिवर्जितैः ॥
तेषां नामानि क्रमशः समाचक्ष्व सुरेश्वर ! ॥१॥"

रुद्र उवाच ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तामसानियथाक्रमम् ।
येषां स्मरणमात्रेण मोहः स्याज्ज्ञानिनामपि ॥

प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् ।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि चततः शृणु ॥

कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् ।
गौतमेन तथान्यायंसांख्यंतु कपिलनेव वै ॥

धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् ।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुनाबुद्धरूपिणा ॥

बौद्ध शास्त्रं महत्प्रोक्तं नग्ननील पटादिकम् ।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ॥

मयैव कथ्यते देवि ! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ।※
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयँल्लोक गर्हितम् ॥

कर्मस्वरूपं त्याज्यत्वं यत्र वै प्रतिपाद्यते ।
सर्वकर्म परिभ्रष्टो विकर्मस्थः स उच्यते ॥

परेश जीवयोरैक्यं मयाऽत्र प्रतिपाद्यते ।
ब्राह्मणोऽत्र परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यतेमया ॥९॥

※ यही प्रमाण सांख्य सूत्र के वृत्तिकार पं. विज्ञान भिक्षु ने दिया है देखो पं. बलदेव उपाध्याय कृत 'श्री शंकराचार्य' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७१ की पाद-टिप्पणी ।

सर्वस्य जगतो ऽप्यत्र मोहनार्थं कलौयुगे ।
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थकम् ।।

निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ।
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोधमे ।।

पुराणानि च वक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमात् ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवंच शैवं भागवंतत्तथा ।।१३।।

तथैव नारदीयं तु मार्कण्डेयंतु सप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ।।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।
द्वादशं च वराहं च वामनं च त्रयोदशम् ।।१५।।

कौर्मं चतुर्दशं प्रोक्तं मात्स्यं पञ्चदशं स्मृतम् ।
षोडशं गारुडम्प्रोक्तं स्कान्दं सप्तदशं स्मृतम् ।।१६।।

अष्टादशं तु ब्रह्माण्डं पुराणानि यथाक्रमम् ।
मात्स्यं कौर्मं तथालैङ्गं शैवंस्कान्दं तथैव च ।

आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।

गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ! ।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानिशुभानिवैं ।

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ।।२०।।

सात्विकामोक्षदाःप्रोक्ताराजसास्वर्गदाःशुभाः ।
तथैव तामसा देविः निरय प्राप्ति हेतवः ।।२१।।

तथैव स्मृतयः प्रोक्ता ऋषिभिस्त्रिगुणान्विताः ।
सात्विकाराजसाश्चैवतामसाः शुभदर्शने ।।

वासिष्ठं चैव हारीतं व्यासं पाराशरन्तथा ।
भारद्वाजं काश्यपंच सात्विकामुक्तिदाः शुभाः ॥

मानवं याज्ञवल्क्यं चाऽप्यात्रेयं दाक्षमेव च ।
कात्यायनं वैष्णवं चराजसाः स्वर्गदाशुभाः ॥

गौतमं बार्हस्पत्यं चसांवर्तं च यमंस्मृतम् ।
शांखं चौशनसं चेतितांमसानिरय प्रदाः ॥

किमत्र बहुनोक्तेन पुराणेषु स्मृतिस्वपि ।
तामसा नरकायैव वर्जयेत्तान्विचक्षणः ॥२६॥

—पद्मपुराण, ६ उत्तरखण्ड, अध्याय २३६

अर्थ—हे अनघ! उन तामसशास्त्रों को बतलाइए जिन्हें भगवद्भक्त-हीन ब्राह्मणों ने बनाया ।

शिव ने कहा—हे देवी ! तामस शास्त्रों को सुनो जिसके स्मरणमात्र से ज्ञानी भी पतित हो जाते हैं । पहले मैंने शैव पाशुमत का उपदेश दिया फिर मेरी शक्ति से युक्त होकर कणादने वैशेषिक, गौतम ने न्याय, कपिल ने सांख्य, बृहस्पति ने अत्यन्त निन्दित चार्वाक, विष्णु ने ही बुद्धरूप धारण करके, मिथ्या बौद्धशास्त्र, नग्ननील वस्त्रादि इसी प्रकार माया व असत् शास्त्र, प्रच्छन्न बौद्धशास्त्र, मैंने ही कलि का रूप धारण करके उपदेश किया था । और श्रुतिवाक्यों का लोक निन्दित भ्रष्टार्थ दिखाया था । इस माया-वाद में कर्मकाण्ड का त्याग मैं कहूँगा और ब्रह्म को निर्गुण और सब जगत् को कलियुग में मोहने के लिए बतलाऊँगा । हे देवी ! वेदार्थ व महाशास्त्र से युक्त होता हुआ मायावाद अवैदिकशास्त्र को संसार के नाश के लिए रक्षा करता हूँ । जैमिनी ब्राह्मण का कहा निरर्थक निरीश्वरवाद प्रतिपादित शास्त्र आदि नाना तामस शास्त्र जानो ।

मैं तामस पुराणों को यथाक्रम कहता हूँ ।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु और शिव तथा भागवत, नारदीय और सप्तम

मार्कण्डेय, अग्नि आठवां तथा नवां भविष्य, दशवां ब्रह्मवैवर्त्त और ग्यारहवां लिङ्ग, बारहवां वराह, और तेरहवां वामन, चौदहवां कूर्म और पन्द्रहवां मत्स्य, सोलहवां गरुड़, सत्रहवां स्कन्द और अठारहवां ब्रह्माण्ड पुराण यथाक्रम हैं। मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि इन छः को तामस जानो। विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म, वाराह ये सात्विक पुराण हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्म राजस पुराण जानो। सात्विक पुराण मोक्ष देने वाले और राजस स्वर्ग देने वाले हैं। हे देवी! ये तामसपुराण नरक प्राप्ति के कारण हैं।

उसी प्रकार ऋषियों ने सात्विक, राजस व तामस इन तीनों गुणों से युक्त स्मृतियों को कहा है। वशिष्ठ, हारीत, व्यास, पराशर, भारद्वाज, काश्यप, ये पांच सात्विक और मुक्ति प्रदान करने वाली स्मृतियां हैं। मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, दक्ष, कात्यायन, विष्णु,ये राजस स्मृतियाँ हैं जो स्वर्ग देने वाली हैं। गौतम, बृहस्पति, संवर्त, यम, शंख, औशनस, ये तामस स्मृतियाँ नरक को देने वाली हैं। बहुत क्या कहें, स्मृतियों और पुराणों में जो तामस शास्त्र हैं वे नरक में ले जाने वाले हैं बुद्धिमान् पुरुष उन्हें न मानें।

पं. माधवाचार्यशास्त्री की कल्पना······पद्मपुराण के जिस 'मायावादम्' श्लोक को ऊपर के आक्षेप में प्रमाण रूप से उपस्थित किया गया है यह भी वस्तुतः प्रक्षिप्त है, श्री पं. कालूराम शास्त्री आदि ने इसको प्रक्षिप्त ही सिद्ध किया है।[६४]

पं. कालूराम शास्त्री का कुतर्क—"वास्तव में 'मायावादसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेवच' यह पाठ क्षेपक है।[६५]

पं. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, एम. ए.—कुछ विद्वानों का कहना है कि अब तक पद्मपुराण के चार संस्कार हो चुके हैं। पहला व्यासजी द्वारा दूसरा बौद्धधर्म के ह्रास एवं सनातनधर्म के पुनः अभ्युदय के

---

६४. "पुराण-दिग्दर्शन" पृष्ठ १३३
६५. "पुराण धर्म, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ ६

समय तीसरा नारद पुराण के अनुसार और चतुर्थ संस्कार ११वीं और १२वीं शताब्दी में स्वामी रामानुज और माधवाचार्य के समय में हुआ है। इसमें बहुत से श्लोक जो तृतीय संस्कार में नहीं थे, मिला दिए गए हैं। जैसे पाखण्डियों का लक्षण, मायावाद की निन्दा, तामस पुराण का वर्णन, ऊर्ध्वपुण्ड्र, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि वैष्णव चिन्हों के धारण करने की कथा, द्वैतवाद की सुख्याति आदि।[६६]

समीक्षा—आर्यसमाजी व पौराणिक विद्वानों में क्या अन्तर रहा? अब तो पौराणिक भी पुराणों में प्रक्षेप मानने लगे। त्रिपाठीजी के लेखानुसार पद्मपुराण के चार संस्कार हो चुके हैं। उन किसी संस्कार में 'धूमपान' वाला श्लोक मिल सकता है।

क्या शिवजी ने 'भंग के तरंग' में कहा है जो पौराणिक मानने के लिए उद्यत नहीं होते हैं।

(२८) गृहस्थ व्रत महान् तीर्थ है—

"गृहमेधिव्रतादन्यन्महत्तीर्थं न चक्षते।
नात्मार्थे पाचमेवन्नं न वृथाघातयेत्पशुम्॥

प्राणी वा यदि वा प्राणी संस्काराद्यज्ञ मर्हति।
न दिवा प्रस्वपेज्जातुनपूर्वापररात्र्योः॥

न भुंजीतांतराकाले नानृतं तु वदेदिह।
नास्यानश्नन्वसेद्विप्रो गृहेकश्चिदपूजितः॥

तथास्यातिथयः पूज्याहव्यकव्यवहाः स्मृताः।
वेदविद्यव्रतस्नाताः श्रोत्रियावेदपारगाः॥

स्वकर्मजीविनोदांताः क्रियावंतस्तपस्विनः।
तेषां हव्यं च कव्यं चात्यर्हणार्थं विधीयते॥३०८॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय १५

---

६६. 'पुराण तत्त्व मीमांसा, पृष्ठ १२३

अर्थ—"गृहस्थ के व्रत से बढ़कर कोई महान् तीर्थ नहीं बताया गया है। गृहस्थ पुरुष कभी केवल अपने खाने के लिए भोजन न बनावे। वृथा पशुओं की हिंसा न करे। दिन में कभी नींद न ले। रात के पहले और पिछले भाग में भी न सोवे। दिन और रात्रि की सन्धि में भोजन न करें। मिथ्या न बोले। गृहस्थ के घर में कभी ऐसा नहीं होना चाहिए कि कोई ब्राह्मण अतिथि आकर भूखा रह जाय और उसका यथावत् सत्कार न हो अतिथि को भोजन कराने से देवता और पितर संतुष्ट होते हैं; अतः गृहस्थ पुरुष सदा ही अतिथियों का सत्कार करे। जो वेदविद्या और व्रत में निष्णात, श्रोत्रिय, वेदों के पारगामी, अपने कर्म से जीविका चलाने वाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान् और तपस्वी हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषों के सत्कार के लिए हव्य और कव्य का विधान किया गया है।"

टिप्पणी—मनुस्मृति अ. ६ श्लोक ९० में भी गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ व सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ व संन्यास) का आश्रयदाता कहा गया है।

(२९) माता की महिमा—

"नास्ति मातृसमो नाथो नास्तिमातृसमागतिः।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्तिमातृसमंसुखम् ॥३५६॥
नास्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च।
एवं वै परमोधर्मः प्रजापति निर्मितः॥
ये तिष्ठंति सदा पुत्रास्ते यांति परमां गतिम् ॥"

—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ. १८

अर्थ—"माता के समान रक्षक, माता के समान आश्रय, माता के समान स्नेह, माता के समान सुख तथा माता के समान देवता इहलोक और परलोक में भी नहीं है। यह ब्रह्माजी का स्थापित किया हुआ परम धर्म है। जो पुत्र इसका पालन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।"

(३०) किन पर विश्वास न करें—

"नखीनां च नदीनां च शृङ्गिणां शास्त्रधारिणाम् ।
न विश्वासस्त्वय कार्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।
न विश्वसेद विश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत् ॥३६७॥

विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।
न विश्वसेत्स्वदेहेऽपि वलिष्ठे[1] भीतचेतसि ॥३६८॥
वक्ष्यंति गूढमत्यर्थं सुप्तं मत्तं प्रमादतः ॥३६९॥"

[—पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० १८]

अर्थ—"नखवाले जीवों का, नदियों का, सींगवाले पशुओं का, शस्त्र धारण करने वालों का, स्त्रियों का तथा दूतों का कभी विश्वास न करना चाहिए। जिस पर पहले कभी विश्वास नहीं किया गया हो, ऐसे पुरुष पर तो विश्वास करे नहीं; जिस पर विश्वास जम गया हो। उस पर भी अत्यन्त विश्वास न करें; क्योंकि (अविश्वासनीय पर) विश्वास करने से जो भय उत्पन्न होता है, वह विश्वास करने वाले का समूल नाश कर डालता है औरों की तो बात ही क्या है, अपने शरीर का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। भीरु स्वभाव वाले वालक का भी विश्वास न करें; क्योंकि वालक डराने धमकाने पर प्रमाद वश गुप्त बात भी दूसरों का बता सकते हैं।"

(३१) सत्य की महिमा—

"सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
उदधिस्सत्यवाक्येन मर्यादां न विलंघते ।
विष्णवे पृथिवीं दत्त्वावलिः पातालमाश्रितः ॥
छद्मनापिबलिर्बद्धः सत्यवाक्यं न चात्यजत् ।
प्रवर्धमानः शैलेन्द्रः शतः शृङ्ग ! समुत्थितः ।

---

१. वालेऽप्याभीतचेतसि" यह पाठ भेद है—(लेखक)

सत्येन संस्थितो विंध्यः प्रबन्धं नातिवर्तते ।
स्वर्गा पवर्गनरकाः सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः ॥४०२॥

यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ।
अगाध सलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाह्लदे ॥
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ।
अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ॥
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४०६॥
सत्यं साधुफलं श्रुतं च परमंक्लेशादिभिर्वर्जितं ;
साधूनां निकटं सतां कुलधनं सर्वाश्रमाणां फलम् ।
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जग तस्साधारणं भूषणं ;
यन्म्लेच्छो ऽप्यभिधार्यं गच्छति दिवं तत्त्यज्यते
वा कथम् ॥४०७॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय १८]

अर्थ—"सत्य ही पर संसार प्रतिष्ठित है, धर्म की स्थिति भी सत्य में ही है। सत्य के कारण ही समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। राजा बलि भगवान् विष्णु को पृथ्वी देकर स्वयं पाताल में चले गए और छल से बांधे जाने पर भी सत्य पर डटे रहे। गिरिराज विन्ध्य अपने सौ शिखरों के साथ बढ़ते बढ़ते बहुत ऊंचे हो गये थे, किन्तु सत्य में बँध जाने के कारण ही वे [महर्षि अगस्त्य के साथ किए गए] अपने नियम को भी नहीं तोड़ते। स्वर्ग, मोक्ष तथा धर्म सब सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं। जो अपने वचन का लोप करता हैं उसने मानो सबका लोप कर दिया।

सत्य अगाधजल से भरा हुआ तीर्थ है, जो उस शुद्ध सत्यमय तीर्थ में स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त होता है। एक सहस्र अश्वमेधयज्ञ और सत्य भाषण ये दोनों यदि तराजू पर रखे जायें तो एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों में सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य ही उत्तम तप है, सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सत्य भाषण में

किसी प्रकार का क्लेश नहीं है। सत्य ही साधु पुरुषों की परख के लिए कसौटी है। वही सत्पुरुषों की वंश परम्परागत सम्पत्ति है। सम्पूर्ण आश्रयों में सत्य का ही आश्रय श्रेष्ठ माना गया है। वह अत्यन्त कठिन होने पर भी उसका पालन करना अपने हाथ में है। जिस सत्य का उच्चारण करके म्लेच्छ भी स्वर्ग में पहुँच जाता है अर्थात् सुख पाता है, उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है।"

"नास्ति सत्यात्परोधर्मोनानृतात्पातकं परम् ॥"

---[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० ५०, श्लो० ९७;
अध्याय ५२ श्लो० ९४]

अर्थ—"सत्य से बढ़कर कोई धर्म और झूठ से बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है।'

(३२) अहिंसा परमधर्म है—

"नास्त्यहिंसा समंदानं नास्त्यहिंसा समं तपः ॥४४३॥

यथाहस्ति पदेस्वन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते।
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्रे प्रलीयंतेह्यहिंसया ॥४४४॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० १८]

अर्थ—"अहिंसा के समान न कोई दान है, न कोई तपस्या। जैसे हाथी के पदचिह्न में अन्य सभी प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसा के द्वारा सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं।"

"अहिंसा परमोधर्मो ह्यहिंसैव परं तपः।
अहिंसा परमं दान मित्याहुर्मुनयः सदा ॥२७॥"

—[पद्मपुराण, ३ स्वर्गखण्ड, अ० ३१]

अर्थ—"अहिंसा परमधर्म है, अहिंसा ही श्रेष्ठ तपस्या है तथा अहिंसा को ही मुनियों ने सदा श्रेष्ठ दान बताया है।"

(३३) सन्तोष ही परमसुख है—

"असंतोषः परं दुखं सन्तोषः परमंसुखम् ॥२६०॥
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्संतुष्टः संततं भवेत् ॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अ० १९]

अर्थ—"असन्तोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है; अतः सुख चाहने वाले पुरुष को सदा सन्तुष्ट रहना चाहिए।"

टिप्पणी—मनुस्मृति अ० ४ श्लो० १२ के आधार पर पुराणकार ने उपर्युक्त श्लोक को बनाया है।

किसी कवि ने भी कहा है—

"गोधन गजधन वाजिधन सबरत्न धन खान, ।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूलि समान ॥"

(३४) आततायी कौन है ?

"अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुप्तघः ।
क्षेत्र दारापहारी च षडेते ह्याततायिनः ॥५८॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ५०]

अर्थ—"जो घर में आग लगाता है, दूसरों को विष देता है। धन चुरा लेता है, सोते हुए को मार डालता है, खेत तथा स्त्री का अपहरण करता है—ये छः आततायी माने गए हैं।"

टिप्पणी—मनुजी भी कहते हैं—

"अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्र दारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥२३॥"

—[मनुस्मृति अ० ८, श्लोक ३५० के आगे]

अर्थ—"आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र उठाने वाला, धनापहरण करने वाला, खेत तथा स्त्री को चुराने वाला, ये छः 'आततायी' होते हैं।"

"उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा।
आथर्वणेन :हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि ॥२४॥"

अर्थ—"(मारने के लिए) तलवार उठाया हुआ, विष लिया हुआ, आग लिया हुआ, शाप देने के लिए हाथ उठाया हुआ, अथर्व विधि (मारणादि तान्त्रिक विधि) से मारने वाला, राजा की चुगली करने वाला ॥२४॥"

"भार्यारिक्थापहारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः।
एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वाने वाततायिनः ॥२५॥"

—[मनुस्मृति अ० ८, श्लोक ३५० के आगे]

अर्थ—"स्त्री के धन का अपहरण करने वाला, छिद्रान्वेषी इत्यादि इस प्रकार के सभी लोगों को आततायी ही जानना चाहिए।"

मनुस्मृति ८।३५० के अनुसार 'आततायी' को मारने में दोष नहीं होता है।

(३५) स्त्रियों को स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए—

"घृत कुम्भ समा नारी तप्ताङ्गार समः पुमान्।
तस्मात् घृतं च वह्निं च नैकस्थाने च धारयेत् ॥२१॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ५४]

अर्थ—"नारी घी से भरे हुए घड़े के समान है और पुरुष दहकते हुए अंगारे के समान, इसलिए घी और अग्नि को एक स्थान पर नहीं रखना चाहिए।"

"पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥२३॥

अरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाक वशगो भवेत्।
तथैव युवती नारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतां व्रजेत् ॥२५॥

पुनरेव कुलं दुष्टं तस्यास्संसर्गतो भवेत्।
पर बीजेन यो जातः स च स्याद्वर्ण सङ्करः ॥२६॥"

—[पद्मपुराण, १ सृष्टिखण्ड, अध्याय ५८]

अर्थ—"बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र नारी की रक्षा करता है। उसे कभी स्वतन्त्रा नहीं देनी चाहिए ॥२३॥ जैसे तैयार की हुई रसोई पर दृष्टि न रखने से उस पर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होने पर व्यभिचारिणी हो जाती है ॥२५॥ पुनः उस कुलटा के संसर्ग से सारा कुल दूषित हो जाता है। पराये बीज से उत्पन्न होने वाला मनुष्य वर्णसङ्कर कहलाता है।"

टिप्पणी—श्लोक २३, मनुस्मृति अ. ९ श्लोक ३ की प्रतिलिपि है।

(३६) धर्म-पूर्ति के साधन—

"ब्रह्मचर्येण सत्येन मखपञ्चकवर्तनैः।
दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ ॥४७॥

अहिंसया सुशक्त्या च अस्तेयेनापि वर्तनैः।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेवं प्रपूरयेत् ॥४८॥"

—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय १२)

अर्थ—"ब्रह्मचर्य, सत्य, पञ्चयज्ञों का अनुष्ठान, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, उत्तमशक्ति और चोरी का अभाव ये पुण्य के अंग हैं, इनके अनुष्ठान से धर्म की पूर्ति करनी चाहिए।"

(३७) सच्चे तीर्थ कौन हैं ?

श्रद्धा-तीर्थ

"नास्ति श्रद्धा समंपुण्यं नास्ति श्रद्धा समंसुखम् ।
नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप ॥२५॥"

—[पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ३९]

अर्थ—"संसार में प्राणियों के लिए श्रद्धा के समान पुण्य, श्रद्धा के समान सुख और श्रद्धा के समान तीर्थ नहीं है।"

पति ही सच्चा तीर्थ—

"युवतीनां पृथक्तीर्थं विनाभर्तुर्नु शोभते ।
सुखदं नास्ति वै लोके स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥१२॥

सव्यंपादं च भर्तुश्च प्रयागं विद्धिसत्तम ।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत् ॥१३॥

तस्य पादोदक स्नानात्तत्पुण्यपरिजायते ।
प्रयाग पुष्कर समं स्नानं स्त्रीणां न संशयः ॥१४॥

सर्वतीर्थं मयो भर्ता सर्व पुण्यमयः पतिः ।
मखानां यजनात्पुण्य यद्वै भवति दीक्षिते ॥१५॥

तत्फलं समवाप्नोति सेवया भर्तुरेवहि ॥१६॥"

—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ४१)

अर्थ—युवतियों के लिए पति के सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं है, जो इस लोक में सुखद और परलोक में स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला हो। साधु श्रेष्ठ ! स्वामी के दाहिने चरण को प्रयाग समझिए और बायें को पुष्कर। जो स्त्री ऐसा मानती है तथा इसी की भावना के अनुसार पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे उन तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्रियों के लिए पति

के चरणोदक का अभिषेक प्रयाग और पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के समान है। पति समस्त तीर्थों के समान है। पति सम्पूर्ण पुण्यों के समान है। यज्ञ की दीक्षा लेने वाले पुरुष को यज्ञों के अनुष्ठान से जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पति की पूजा करके तत्काल प्राप्त कर लेती है।

"भर्तानाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतः सह ॥७६॥
भर्तातीर्थश्च पुण्यश्च नारीणां नृपनन्दन ॥७७॥"

—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ४१)

अर्थ—"पति ही स्त्री का स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओं सहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थं एवं पुण्य है।"

टिप्पणी—मनुस्मृति ५।१६५ में 'पातिव्रत्य का फल' ५।१६५, १६६ में 'पातिव्रत्य का फल, ९।२९ में 'अव्यभिचार का सत्फल का वर्णन है।

(३८) धर्माचरण की अवस्था—

"जराभिभूतोऽपिजन्तुः पत्नी पुत्रादि बान्धवैः।
अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥११७॥
न धर्ममर्थं कामं च मोक्षं च जरयायुतः।
शक्तः साधयितुं तस्माद्युवाधर्मं समाचरेत् ॥११८॥"

—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. ६६)

अर्थ—"जवानी के बाद जब वृद्धावस्था मनुष्य को दबा लेती है, तब असमर्थ होने के कारण उसे पत्नी-पुत्र आदि बन्धु बान्धव तथा दुराचारी भृत्य भी अपमानित कर बैठते हैं। बुढ़ापे से आक्रान्त होने पर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से किसी का भी साधन नहीं कर सकता। इसलिए युवावस्था में ही धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।"

(३९) विद्याध्ययन अनिवार्य है—

"विद्यया प्राप्यते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथाऽतुला ॥२५॥
ज्ञानं स्वर्गश्च मोक्षश्च तस्माद्विद्यां प्रसाधय ॥२६॥"

—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. १२२)

अर्थ—"विद्या से सुख मिलता है, यश और अतुलित कीर्त्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान, स्वर्ग और उत्तम मोक्ष मिलता है; अतः विद्या सीखो।"

(४०) गुरु ही सच्चा तीर्थ है—

"तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्ततताम् ॥५०॥
नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज ॥५१॥"
—(पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय १२३)

अर्थ—"(संसार में भटकने वाले) मनुष्यों को तारने के लिए गुरु के समान बन्धन-नाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।"

"स्थलजाच्चो दकात्सर्व बाह्यं मलं प्रणश्यति ॥५२॥
जन्मान्तरकृतानपान्पगुरुतीर्थं प्रणाशयेत्।
संसारतारणयैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम् ॥५३॥"
—[पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अ. १२३]

अर्थ—"भूतल पर प्रकट हुए जल से बाहर का ही सारा मल नष्ट होता है, किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तर के पापों का भी नाश कर डालता है। संसार में जीवों का उद्धार करने के लिए गुरु चलता फिरता उत्तम तीर्थ है।"

टिप्पणी—'समान तीर्थेवासी'
—(अष्टाध्यायी ४।४।१०७)

अर्थ—"जो ब्रह्मचारी एक आचार्य से और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थसेवी ही होते हैं।"

यहां गुरु को 'तीर्थ' और ब्रह्मचारियों को 'सतीर्थ्य' कहा गया है।

गया, प्रयाग, हरिद्वार, वाराणसी प्रभृति तीर्थ स्थानों में जाना समय और द्रव्य का नाश करना है।

(४१) पत्नी के बिना किया गया धर्म निष्फल है—

"भार्याहीनस्य पुंसोऽपि न सिध्यति महाव्रतम् ।
धर्म कर्माणि सर्वाणि पुण्यानि विविधानि च ॥२१॥

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय ५९

अर्थ—'स्त्री रहित पुरुष भी महाव्रतों को धर्म, कर्म, सब नाना प्रकार के पुण्य सिद्ध नहीं कर पाता है।'

इसी प्रकार इस अध्याय के श्लोक ८ से ३३ तक में पत्नी की महिमा की चर्चा है।

(४२) दिव्यादेवी के २१ पति से विवाह—

"एक विंशतिभर्तारः कालकाले मृताः पितः ।
ततो राजा महादुःखी सञ्जातः ख्यातविक्रमः ॥७१॥"

—पद्मपुराण, २ भूमिखण्ड, अध्याय ८५

अर्थ—"(इस प्रकार से उस दिव्यादेवी के) इक्कीस पति समय-समय पर मृत्यु को प्राप्त हुए तब उनका पिता प्रसिद्ध विक्रम राजा दिवोदास महादुःखी हुआ।"

यही श्लोक 'पद्मपुराण, ५ पातालखण्ड, अध्याय ९२ श्लोक ५२ में भी है 'वहां मृताः पितः, के स्थान पर मृतास्ततः पाठ है।'

पद्मपुराण में २१ पति का विधान—

मैंने 'नीर क्षीर विवेक' पृष्ठ ७४ में 'पद्मपुराण' से दिव्यादेवी के २१ पति का वर्णन दो श्लोकों से प्रदर्शन मात्र कर दिया था। इस पर पं. दीनानाथ शास्त्री जी ने पृष्ठ ८८९ से ८९१ तक लिखा है कि※—

※ श्रीसनातनधर्मालोक (७) पुष्प

'.........विवाह का समय प्राप्त होने पर उसका भावी पति मर जाता था.........।' यदि उसका विवाह पूरा हो जाता तो वह विधवा हो जाती, उसका फिर विवाह न हो सकता। इसीलिए उसी पुराण में लिखा है—'अनुद्वाहित-कन्यायां उद्वाहः क्रियते बुधैः। न स्याद्रजस्वला यावद् अन्यः पतिर्विधीयते (८५।६५)। इसीलिए अविवाहिता होने से पति के मरने पर विवाह का आदेश शास्त्रीय था; तभी ब्राह्मणों ने कहा कि इसका विवाह कर दो (६७)।

...... कइयों के मत में चतुर्थी कर्म में विवाह की पूर्णता होती है। उससे पूर्व पति की मृत्यु में कन्या का विवाह हो सकता है। जैसे कि कहा है—'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितेऽपतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' (पराशर ४।३२) यहाँ पर 'अपतौ' का अर्थ है 'ईषत् पति'। सप्तपदी से पूर्व ईषत्पतित्व होने से उसकी मृत्यु में विवाह हो सकता है, वह विधवा-विवाह नहीं कहा जा सकता। इस श्लोक में 'पतौ' है वा 'अपतौ' इस विषय में ८म पुष्प में (पृ० ६४१-६८१) देखिए।....अब २१ पति का विधान कहाँ हुआ ?....'

समीक्षा—मैंने पूर्वापर कोई पाठ नहीं छिपाया है। जितने पाठ की आवश्यकता होती है वह प्रदर्शित कर दिया जाता है। आप तो अपने ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाने के लिए व्यर्थ का सारा प्रकरण लिख कर साधारण जनता में अपनी विद्वता की धाक जमाना चाहते हैं।

आपने यहाँ भी पाठ भेद करके जघन्य पाप किया है और अपने पक्ष की पुष्टि करने का कुप्रयास किया है।

'उद्वाहितायाः'....पाठ है जिसे आपने 'अनुद्वाहित....' में परिवर्तन कर दिया हैं। आपने कुतर्काचार्य श्री कालूराम शास्त्री लिखित 'विधवा विवाह निर्णय'[६७] पृष्ठ ४२२ से बिना समझे बूझे प्रतिलिपि कर ली है।

६७. संवत् १९८५ वि० में बी० एन० फाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग प्रेस, इटावा में मुद्रित, प्रथम संस्करण

मेरे सामने सन् १९५७ ई० में श्री मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा और संवत् १९५१ वि० में श्री वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित 'पद्म पुराण' की प्रतियां हैं। दोनों के श्लोकों में अन्तर है।

आपने 'श्रीसनातनधर्मालोक (७) पृष्ठ ८९०' में 'अनुद्वाहित....' श्लोक का पता ८५।६५ दिया है, श्री कालूराम शास्त्री ने 'विधवा विवाह निर्णय' पृष्ठ ४२२ में ८५।६४ पता दिया है। कलकत्ते के संस्करण पृष्ठ २७७ में ८५।६५ है; पर बम्बई संस्करण पृष्ठ ८२ में ८५।३४ है। अब बताइए प्रामाणिक कौन माना जाय ?

'उद्वाहिता' पाठ को 'अनुद्वाहिता' पाठ किसने किया, यह कहना कठिन है। अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिए पौराणिक वर्ग इस प्रकार का परिवर्तन किया करते हैं।[६८]

पौराणिक विद्वान् भी 'पद्मपुराण' में परिवर्तन व प्रक्षेप मानते हैं।

---

६८. 'इमा नारीरविधवाः....योनिमग्रे' (ऋ० १०।१८।७) मन्त्र में 'अग्रे' का 'अग्ने' बना कर बंगाल के पण्डितों ने सतीदाह प्रथा की पुष्टि में इस मंत्र को प्रस्तुत किया था—[देखो—पं.बदरीदत्त जोशीकृत 'विधवोद्वाहमीमांसा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४५; पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ कृत 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' प्रथम संस्करण, भूमिका, पृष्ठ २१; पं० शिव शर्मा जी कृत 'धर्मशिक्षा, तृतीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४]; मुस्तफापुर के शास्त्रार्थ में यजुर्वेद में पौराणिक पं० गङ्गाविष्णु काव्यतीर्थ ने 'आखु वाहनं गजाननाय' ऐसा पाठ अपनी ओर से जोड़ दिया था—धर्मशिक्षा, तृतीय भाग, पृष्ठ २४; श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' प्रथमावृत्ति शतपथ में 'मूर्तिनिर्माणाय' पाठ मिलाया था ['शास्त्रार्थ-महारथी' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७९ की पाद-टिप्पणी]

श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र[६९] श्री कालूराम शास्त्री[७०] श्री माधवाचार्य शास्त्री[७१] श्री श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, एम० ए०[७२] पद्म व सभी पुराणों में परिवर्तन व प्रक्षेप मानते हैं ।

वास्तव में यहाँ पाठ 'उद्वाहिता' ही है जिसका अर्थ है 'विवाहिता होने पर' ।

मैंने आनन्दाश्रम, मुद्रणालय, २२ बुधवार पेठ, पूना-२ के प्रबन्धक के पास पत्र लिखकर इस सम्बन्ध में पूछा तो वहाँ से यह पत्र आया है जो नीचे दिया जाता है—

'जा० क्र । जे०✓ । ६३. दिनांक २४।१।६३

डॉ० कुशवाह महोदय; सादर विज्ञप्ति ।

महोदय से दि० २१।१।६३ का आया जवावी कार्ड प्राप्त हुआ । इस सम्बन्ध में निवेदन है कि पद्मपुराण-भूमिखण्ड २ अध्याय ८५ श्लोक ६१ का उतारा नीचे क्षेपित करता हूँ । यह पाठ आनन्दाश्रम प्रकाशित ग्रन्थ में है ।

"[३]उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाहः क्रियते बुधैः ।
न स्याद्रजस्वला यावदन्येष्वपि विधीयते ॥६१॥
विवाहंतु विधानेन, पिता कुर्यान्न संशयः ॥"

इस श्लोक पर ३रे क्रमांक पर एक पाठ भेद दिया है और वो [३ ङः छ 'अनुद्वाहितायां'] ऐसा है । यहाँ की आवृत्ति सन् १८९३ की है ।

---

६९. 'अष्टादश पुराण दर्पण' पृष्ठ १०४-१०५
७०. 'पुराण वर्म पूर्वार्द्ध' पृष्ठ १२६
७१. 'पुराण-दिग्दर्शन' पृष्ठ ३३ से ३५ तक
७२. 'पुराण तत्त्व मीमांसा' पृष्ठ ५१, ५२, ५३, १२५

भवदीय

………मैनेजर

आनन्दाश्रम, पूना-२ ।'[७३]

इस पत्र से स्पष्ट प्रकट हो गया कि पाठ 'उद्वाहितायां' ही है। वास्तविक पाठ यही है पर अन्य संस्करणों में साम्प्रदायिकों ने 'अनुद्वाहितायां' छाप दिया। इसलिए आनन्दाश्रम मुद्रणालय ने भी दे दिया। जिसे श्री कालूराम शास्त्री ने 'विधवा-विवाह-निर्णय' में 'अनुद्वाहिता' पाठ लिखा है उनसे ही शास्त्रार्थकेसरी पं० अमरसिंह जी 'आर्य मुसाफिर' से होशियारपुर (पंजाब) में 'विधवा-विवाह' पर शास्त्रार्थ हुआ था। उसमें पं० अमरसिंहजी ने 'पद्मपुराण भूमिखण्ड २, अ० ८५, श्लोक ६१ का पाठ 'उद्वाहिता' पाठ[७४] [छापा आनन्द आश्रम पूना सन् १८९३ ई०] रखा था। उस समय श्री कालूराम शास्त्री की बोलती बन्द हो गई थी और वहाँ इस पाठ को स्वीकार कर लिया था।

शास्त्रार्थ महारथी श्री शिवस्वामी सरस्वती (पूर्व पं० शिव शर्माजी महोपदेशक) द्वारा स्पष्टीकरण—

"सहृदय पाठकगण ! इन श्लोकों का अनर्थ करने में वह २ छल कपट किए हैं कि हमको इन हठीलों की करतूत पर लज्जा आती है। इन अबलाओं पर अत्याचार करने के लिए पाठ भेद किया—'उद्वाहितायाम्' के स्थान पर 'अनुद्वाहितायाम्' छपवाया !! परन्तु इन स्वार्थी जीवों को इतना तक ज्ञान नहीं हुआ कि यहाँ पर छन्दोभङ्ग हो गया—पहले चरण में ८ मात्राओं के स्थान में ९ मात्राएं हो गईं। कभी कई पाठ लिखकर कहते हैं कि यह हमारा छल-कपट पाठ ठीक है !!! कोई कहता है कि

---

७३. आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना-२ का पत्र मुझे दिनांक २९-१-१९६३ ई० को प्राप्त हुआ था। —लेखक

७४. 'विधवा विवाह पर अनुपम शास्त्रार्थ' पृष्ठ २१ [जून १९३५ ई० में सुदर्शन प्रिंटिंग वर्क्स, खुर्जा (जि० बुलन्दशहर) द्वारा मुद्रित]

दिवोदास शूद्र था। परन्तु इनको 'दिव्यादेवी द्विजोत्तमा' पाठ किसी से पढ़वाया भी न गया। कभी कहते हैं कि विवाह होने से पहले पति मर जाय, तब यह पुनर्विवाह का विधान है। दिव्यादेवी का विवाह नहीं होने पाया था कि पति मर गए। 'नाना रूपधारा कीला विचरन्ति महीतले'। ये सारे प्रपंच इस ही लिए रखे जाते हैं कि इन दुधमुँही वच्चियों पर अत्याचार होता रहे—यह हठी जीव गुलछर्रें उड़ाते रहें। भला यह तो सोचिये कि फेरे फिर गए, लाजाहोम हो गया, सप्तपदी होने को है, कि आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा—वर नपुंसक कभी का हो गया, सगोत्र भी नहीं रहा, संन्यासी भी हो गया, महाव्याधियों ने भी आकर जकड़ लिया और यहां तक हो गया कि वर के साथ प्रसङ्ग भी हो गया !!! वरना इतनी आशङ्काएँ उपस्थित क्यों की जातीं ? क्या 'वाचासत्ये कृते सति' का यही आशय है ? किसी शास्त्र में भी सप्तपदी से पूर्व विवाह पूर्ण नहीं होता, ऐसा नहीं लिखा है। न इतने विवाह को 'अल्प विवाह' कहा गया है। जो आपात्काल स्मृतियों में वताए हैं, वे विवाह हो जाने पर भी आ सकते हैं कि सप्तसदी से पूर्व। अब देखिए—दिव्यादेवी का अपना बयान, कि वह विधवा रही या कुमारी—

१. 'वैधव्य भुंजतेसातु' अ० ८६ ।। श्लोक ४१ ।।
अर्थात्—वह दिव्यादेवी वैधव्य भोग रही है।

२. 'विपाको हि महाभाग कर्मणां मम साम्प्रतम् ।।'
अर्थात्—हे महाभाग ! यह मेरे पूर्व कर्मों का फल ही इस समय है।

३. 'इहतिष्ठामि दुःखेन वैधव्येन समन्विता' ।। ८८/१३ ।।
अर्थात्—यहाँ पर ठहरी हूँ दुःख के साथ वैधव्य-युक्त हूँ।

क्यों हठीले पण्डितो ! क्या सप्तपदी या विवाह होने से पूर्व भावी पतियों के मर जाने पर भी विधवा हो जाती है ? तब तो श्रीमानों ने अबलाओं के लिए एक और विपत्ति खड़ी कर दी !! इस आपके आर्डिनैंस

से तो बहुत शीघ्र ही आपका मनोरथ सिद्ध हो जाएगा—विधवाओं की संख्या कई गुनी अधिक हो जायगी। फिर यार लोगों की बड़ी चैन से गुजरेगी। भले मानसो! न तो आपको शास्त्र के कोप का भय है, न विधवाओं की बढ़ती हुई संख्या की ओर ध्यान है, न इस पर कुछ शोक करते हो कि गोरक्षक कम हो रहें हैं और न भ्रूणहत्या का दुःख ही आपको सताता? आपको सताता है केवल विधवाओं का उद्धार! यदि ऐसा न होता तो वेद से लेकर पुराण और तन्त्र पर्यन्त ग्रन्थों की आज्ञाओं को ठुकराकर अपने अनर्थों पर दृढ़ कर पाठ भेदादि करते हुए कुछ संकोच तो करते? अब भी समय है इन अबलाओं की दशा पर आँसू बहाओ।'[७५]

२६ फरवरी सन् १९२८ ई० में उपर्युक्त पं० शिव शर्माजी महोपदेशक तथा श्री अखिलानन्द शर्मा कविरत्न के मध्य विधवाविवाह पर कोपागंज (ज़िला आजमगढ़, उत्तरप्रदेश) में शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें कविरत्नजी बुरी तरह पराजित हुए थे। उसके पं० शिव शर्माजी ने कहा था—'....११ दूनी २२ के लगभग तो पुराणों में खसम बताए हैं। देखो—'एकविंशतिभर्तारः काले काले मृता तदा' पद्मपुराण।'....

इस पर पं० अखिलानन्द शर्मा ने कहा था—'दिवोदास की कन्या दिव्यादेवी के २१ पति फेरे फिरने से पहले मर गए थे?....'

पं० शिव शर्माजी ने कहा था—'वहाँ पद्मपुराण में 'उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाहः क्रियते बुधैः' ऐसा पाठ है। उद्वाहिता के अर्थ ब्याही हुई के हैं न कि कुमारी के।....'[७६]

इनके अतिरिक्त पं० बदरीदत्तजी जोशी,[७७] शास्त्रार्थ-महारथी पं०

---

७५. 'शास्त्रार्थ-महारथी' प्रथम संस्करण पृष्ठ १६९-१७०

७६. 'शास्त्रार्थ कोपागंज' पृष्ठ २०-२१ [जार्ज प्रिंटिंग वर्क्स, काल भैरव, काशी द्वारा मुद्रित व आर्यसमाज, कोपागंज द्वारा प्रकाशित]

७७. 'विधवोद्वाहमीमांसा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ९९

मनसाराम जी 'वैदिक तोप'[७८] पं० तुलसीराम स्वामी के भ्राता पं० छुट्टन-लालजी स्वामी[७९] तथा पं० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय[८०] प्रभृति विद्वान् 'उद्वाहिता' ही पाठ मानते हैं।

अब पूरा प्रकरण देखिए—

'उज्जवल उवाच।

प्लजद्वीपे महाराज आसीत्पुण्यमतिः सदाः।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा तत्सुतासीदनूपमा ॥
गुणरूपसमायुक्ता सुशील चारु मङ्गला।
दिव्यादेवीति विख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि।

पित्रा विलोकिता सा तु रूप लावण्य संयुता।
प्रथमे वयसि सा च वर्त्तते चारे मङ्गलः ॥५५॥

स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्यादेवीं सुतां तदा।
कस्मै प्रदीयते कन्या सुवराय महात्मने ॥५६॥

इति चिन्तापरो भूत्वा समालोक्य नरोत्तमः।
रूपदेशस्य राजानं समालोक्य महीपतिः ॥५७॥

चित्रसेनं महात्मानं समाहूय नरोत्तमः।
कन्यां ददौ महात्मासौ चित्रसेनाय धीमते ॥५८॥

तस्या विवाहकाले तु सम्प्राप्ते समये नृप।
मृतोसौ चित्रसेनस्तु कालधर्मेण वै किल ॥५९॥

---

७८. 'पौराणिक पोल-प्रकाश' द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ९३१.

७९. 'पद्मपुराण में एक कन्या के २१ विवाह' पुस्तिका, पृष्ठ ६ (स्वामी प्रेस मेरठ में मुद्रित व प्रकाशित, पंचम संस्करण।

८०. 'विधवा-विवाह-मीमांस' तीसरा संस्करण, पृष्ठ ११३.

दिवोदासस्तु धर्मात्मा चिन्तयामास भूपतिः ।
सुब्राह्मणान्समाहूय प्रपच्छ नृपनन्दनः ॥६०॥

अस्या विवाहकाले तु चित्रसेनो दिवंगतः ।
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्याति वदन्तु मे ॥६१॥

विवाहो दृश्यते राजन् कन्यायास्तु विधानतः ।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नोचेत्सङ्गं करोति च ॥६२॥

महाधिव्याधिनाग्रस्तस्त्यागं कृत्वा प्रयाति च ।
प्रव्राजितो भवेद्राजन्धर्मशास्त्रेसु दृश्यते ॥६३॥

अनुद्वाहितायाः कन्याया उद्वाहः क्रियते बुधैः ।
न स्याद्रजस्वलायावदन्येष्वपि विधीयते ॥६४॥

विवाहं तु विधानेन पिता कुर्यान्न संशयः ।
एवं राजन्समादिष्टं धर्मशास्त्रं बुधैर्जनैः ॥६५॥

विवाहं क्रियतामस्या इत्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा द्विजवाक्यप्रणोदितः ॥६६॥

विवाहार्थं महाराज उद्यमं कृतवान्नृप ।
पुनर्दत्ता तु दानेन दिव्यादेवी द्विजोत्तम ॥६७॥

रूपसेनाय पुण्याय तस्मै राज्ञे महात्मने ।
मृत्युधर्मं गतो राजा विवाहे तु महीपतिः ॥६८॥

यदा-यदा महाभाग दिव्यादेव्याश्च भूपतिः ।
भर्ता च म्रियते काले प्राप्ते लग्नस्य सर्वदा ॥६९॥

एकविंशति भर्तारः काले-काले मृताः पितः ।
ततो राजा महादुःखी सञ्जातः ख्यातविक्रमः ॥७०॥

समालोच्य समाहूय समामंत्र्यसमन्त्रिभिः ।
स्वयंवरे महाबुद्धि चकार पृथिवीपतिः ॥७१॥

प्लक्षद्वीपस्य राजानः समाहूत महात्मना।
स्वयंवरार्थमाहूतास्तथा ते धर्मतत्पराः ॥७२॥
तस्यास्तु रूपसंमुग्धा राजानो मृत्युनोदिताः।
संग्रामं चक्रिरे मूढास्ते मृताः समराङ्गणे ॥७३॥
एवं तात क्षयो जातः क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
दिव्यादेवी सुदुःखार्त्ता गता सा वनकन्दरम् ॥७४॥
रुरोद करुणं वाला दिव्यादेवी मनस्विनी।
एवं तात मयादृष्टमपूर्वं तत्र वै तदा ॥७५॥

—पद्मपुराण, २ भूमिखंड, अध्याय ८५।८१)[८१]

बम्बई संस्करण की पादटिप्पणी में 'रूपलावण्य संयुता' के लिए 'रूप तारुण्य मंगला' पाठ भेद दिया है।

पूना संस्करण के अनुसार 'उद्वाहितायाः' पाठ सही है। अतः इसी के अनुसार अर्थ दिया जायगा।

अर्थ—'उज्जवल ने कहा....प्लक्षद्वीप में सदा पुण्यमति धर्मात्मा महाराज दिवोदास था। उसकी गुण, रूपयुक्त, सुशीला, चारु, मंगला, संसार में प्रसिद्ध रूपवाली दिव्यादेवी कन्या हुई। पिता ने जब देखा कि यह पूर्ण युवती रूप और लावण्य से युक्त सुन्दरी हो गई तब यह सोचकर कि यह कन्या किससे विवाही जाय, चिन्ता करने लगा और रूपदेश के राजा चित्रसेन को देखकर उसी बुद्धिमान को बुलाकर कन्या दे दी। उसके विवाह समय काल-धर्म से प्रेरित होकर चित्रसेन मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब धर्मात्मा दिवोदास ने ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे पूछा कि, इसके विवाह के समय चित्रसेन मर गया, कहिए, मुझे क्या करना चाहिए।'

---

८१. यह पाठ संवत् १९५१ वि. में श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, पृष्ठ ८२। तुलना करो—'पद्मपुराणम्' द्वितीयो-भागः, पृष्ठ २७७-२७८ [सन् १९५७ ई. में श्री मनसुखराम मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—'हे राजन् ! कन्या का विवाह तो विधि के अनुसार हो सकता है, यदि उसका पति मर जाय और पति के साथ उसका संग न हुआ हो, या पति को महारोग लग गया हो, या पति उसे छोड़कर चला जाय, या संन्यासी हो जाय। ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है। विवाहिता कन्या का बुद्धिमान् लोग फिर दूसरों के साथ विवाह कर देते हैं, जब तक वह रजस्वला नहीं हुई। विधिपूर्वक पिता उसका विवाह कर दे। इसमें कोई संशय नहीं है।

जब धर्मशास्त्रों के जानने वाले पण्डितों ने राजा को ऐसा उपदेश किया तो धर्मात्मा दिवोदास ने उनके विवाह का पुनः उद्यम किया और राजा रूपसेन के साथ उसका विवाह कर दिया। परन्तु विवाह के समीप ही वह राजा (रूपसेन) भी मर गया। जब-जब राजा दिव्यादेवी का विवाह करता, तब-तब समय पर ही पति मर जाता। इस प्रकार जब उसके इक्कीस पति मर गए तो राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। वह मन्त्रियों को बुलाकर फिर स्वयंवर की तैयारियां करने लगा और उसने प्लक्षद्वीप के सब राजाओं को निमन्त्रण दिया और जब धर्मात्मा राजा स्वयंवर के लिए बुलाये गए, तब उस लड़की के सौन्दर्य को सुनकर मृत्यु से प्रेरित हुए राजा लोग आपस में लड़ पड़े और युद्ध क्षेत्र में ही मर गए। इस प्रकार हे तात ! महात्मा क्षत्रियों का सर्वनाश हो गया और दुःखिया देव्यादेवी 'वन कन्दरा' में चली गई और वहां रोने-पीटने लगी।........

यहां इतनी बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(क) दिवोदास ने दिव्यादेवी का २१ बार 'विवाह चक्रे' विवाह किया।

(ख) उसके २१ पति मृत्यु को प्राप्त हो गए।

(ग) दिवोदास ने जब उस समय के ब्राह्मणों से पूर्व विवाह के पश्चात् सम्मति मांगी तो उन्होंने स्पष्ट कहा—'कन्या का पति मर जाय और उसका सहवास न हुआ हो (अक्षत योनि), पति

महारोगी हो, पति त्याग कर चला जाय, पति संन्यासी हो जाय तो इन चारों अवस्थाओं में 'उद्वाहितायां कन्यायां' विवाहिता कन्या का विवाह हो सकता है, ये चारों दशाएं वही हैं जो 'पराशर स्मृति' में दी हुई हैं—

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥"

—पराशर स्मृति अ. ४, श्लोक ३० +

अर्थात्—"नष्टे, मृते, प्रव्रजिते, क्लीवे, पांचवी दशा अर्थात् 'पतिते' का इससे उल्लेख नहीं है ! क्लीवत्व और महारोग समान हैं ।

(घ) दिवोदास शूद्र नहीं वरन् महात्मा, धर्मात्मा और गुणवान् क्षत्रिय था । इससे 'पद्मपुराण' से २१ बार विवाह सिद्ध हो जाता है । शास्त्रीजी ने 'श्री सनातनधर्मालोक (८)' पृष्ठ ६५५ से ६८१ तक में 'अपतौ' पाठ को सही माना है । आप वाक्छल से वाग्दत्ता-कन्या के लिए विधान मानते हैं । आपने यहां पर पाठ भेद करके अपने मतलब को पूर्ण करने का घृणित प्रयास किया है । सभी विद्वान् 'पतौ' को शुद्ध पाठ और 'आर्ष प्रयोग' मानते हैं । यहां दो पौराणिक विद्वानों के विचार से यह बात स्पष्ट हो जाती है । देखिए—

महामहोपाध्याय पं. शिवदत्तजी ने 'सिद्धान्त कौमुदी' में दिए हुए अष्टाध्यायी के 'पतिः समास एव' १/४/८ इस पर 'तत्व-बोधिनी टीका' इस प्रकार दी है—

+ श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई द्वारा संवत् १९६५ में मुद्रित [विधवा विवाह-मीमांसा, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ९५ से] तुलना करो 'वैधव्य विध्वंसन चम्पू' प्रथम संस्करण पृष्ठ ७७ जहां इसका प्रमाण 'पराशर स्मृतौ अ. ४ प. २८, वृद्धमनौ अ. ९ प. १११, अग्निपुराणे अ. १५४' प्रमाण दिया हुआ है ।

'पतिः समास एव ॥ एवकार :इष्टतोऽवधारणार्थः । अन्यथा हि 'समासे पतिरेव' इति नियमः सम्भाव्यते । ततश्च महाकविनेत्यादि प्रयोगो न सिध्येत् । 'अनल्विधौ' 'धात्वादेः' इत्यादि ज्ञापकानुसरणे तु प्रतिपत्ति गौरवं स्यादिति भावः । पत्येत्यादि । नन्वेवं 'शेषोऽघय सखि पती' इत्ये-- वोच्यताम् । किमनेन 'पतिः समास एव' इति सूत्रेणेति चेन्न । समुदायस्य पतिरूपत्वाभावेन बहुच्पूर्वकपति शब्दस्नाविधि संज्ञा स्यात् । नतश्च सुसखि- नेत्यादि वद बहुपतिनेत्यादि प्रसल्येत । ईष्यते तु बहुपत्येत्यादि । नापि 'सखि पती समास एव' इत्येव सूत्र्यतामिति शङ्क्यम् । बहु पत्येत्यादिवद्बहु सख्येत्याद्यापत्तेः इष्यते तु बहु सखिनेत्यादि । अथ कथं 'सीतायाः पतए नमः' इति 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' इति पराशरश्च ॥ अत्राहुः । पतिरित्याख्यातः पतिः— 'ताकरोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे 'अच' इः 'इत्यौणादिक प्रत्यये 'णेरनिटि' इति णिलोपेच, निष्पन्नोऽयं पति शब्दः 'पतिः समास एव' इत्यत्र न गृह्यते । लाक्षणिकत्वादिति ।'

यहां न केवल 'पति' का सप्तम्यान्त "पतौ" ही सिद्ध किया है। किन्तु चतुर्थ्यान्त 'पतये' भी सिद्ध कर दिया है और दृष्टान्त भी पराशर स्मृति का दिया हुआ है।

पं. अखिलानन्द शर्मा कविरत्न लिखते हैं— ····[पतिरित्याख्यातः पतिः] इस विग्रह में नाम धातु से यह पद बनता है इसलिए (पतौ) अशुद्ध नहीं यही समाधान दीक्षित ने मनोरमा में किया है नञ का लगाना प्रकरण विरुद्ध है और किसी आचार्य से सहमत नहीं है [आख्यातिक क्रिया के साथ में नञ का सम्बन्ध नहीं होता है] यह व्याकरणों का सिद्धान्त है अकार को यदि अव्यय मानोगे तो उसका पूर्व रूप नहीं होगा इसलिए नञ का लगाना ठीक नहीं है इससे यह सिद्ध हुआ कि पति के मर जाने पर बालविधवा अथवा समस्त विधवाओं का दुबारा विवाह अवश्य कर देना चाहिए।'[८२]

८२. 'वैधव्य विध्वसन चम्पू' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७८

जब वे आर्यसमाजी थे तब का लेख है। पौराणिक होने पर भी इसका खण्डन न कर सके।

पण्डित ईश्वरचन्द्रजी 'विद्यासागर' बंगाल के प्रसिद्ध सनातनधर्मी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने "विधवा विवाह" नामक एक अपूर्व पुस्तक बंग भाषा में लिखी थी जिसमें 'पराशर स्मृति' के श्लोक में "पतौ" ही ठीक माना है।[८३]

मैंने 'पद्म पुराण' से भलीभांति सिद्ध कर दिया कि 'दिव्यादेवी' के २१ वार विवाह हुए थे अतः आपका ११ पति का उपालम्भ व्यर्थ सिद्ध हुआ।

(४३) आपत्तिकाल का धर्म—

"विपत्तौ वैश्यवृत्तिं च कारयेद् द्विजसत्तमः।
वैश्यवृत्तिं वणिग्भावं कृषिं चैव तथा परैः।
कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत्।
वणिग्भावान्मृषात्युक्तौ दुर्गतिं प्राप्नयाद् द्विजः ॥९३॥
आर्द्रं द्रव्यं परित्यज्य ब्राह्मणो लभते शिवम्।
समुत्पाद्य ततो वृत्तिं दद्याद्विप्राय सर्वशः ॥९४॥
पितृयज्ञे तथा चाग्नौ जुहुयाद् विधिवद् द्विजः।
तुलेऽसत्यं न कर्त्तव्यं तुला धर्मं प्रतिष्ठिता ॥९६॥
छल भावं तुले कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते।
अतुले चाऽपि यद् द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत् ॥९६॥
एवं मिथ्या न कर्तव्या मृषा पापप्रसूतिका ॥९७॥"

—पद्मपुराण, ३ सृष्टिखण्ड, अ. ५०

---

८३. पं. जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार' मीमांसातीर्थ द्वारा हिन्दी भाषा में अनुवादित "विधवाविवाह" [सन् १९२६ ई. श्री लक्ष्मी प्रिंटिङ्ग वर्क्स, ३७० अपर चितपुर रोड, कलकत्ता द्वारा मुद्रित व सर्वश्री गोविन्दराम हासानन्द, वैदिक पुस्तकालय, ३७० अपर चितपुर रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

अर्थ—"विपत्तिकाल में द्विजश्रेष्ठवैश्यवृत्ति द्वारा अपना निर्वाह करे। वह वैश्य वृत्ति, वणिग्भाव, कृषि करे और अन्यों से कृषि एवं वाणिज्य करावें तथा विप्रकर्म न छोड़े। वणिजभाव से मिथ्या या अत्युक्ति करने पर द्विज दुर्गति को पा जाता है ? आर्द्र द्रव्य (किसी वाणिज्य में मिथ्या बोलने से अन्यायोपार्जित लाभ) को छोड़ने से ब्राह्मण शिव (कल्याण) को प्राप्त करता है। इस प्रकार वणिग्वृत्ति करके उपार्जित लाभ से दान, पितृयज्ञ और अग्नि में हवनविधि पूर्वक करे। तुला (बाट और तराजू व्यवसाय) में असत्य का व्यवहार न करें क्योंकि तुला में धर्म प्रतिष्ठित है। तुला में छलभाव करके नरक (दुःख) की प्राप्ति होती है। भले ही अतुल द्रव्य मिले परन्तु वहाँ मिथ्या का परित्याग करें। इस प्रकार मिथ्या का किसी भी रूप में आचरण न करें, मिथ्या पाप को उत्पन्न करने वाली है।"

टिप्पणी—राजर्षि मनुजी भी कहते हैं—

"आजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण सह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१॥

—मनुस्मृति अ. १०

अर्थ—"ब्राह्मण यदि अपने कर्म (१०।७५-७६) से जीवन-निर्वाह नहीं कर सके तो क्षत्रिय का कर्म (१०।७७-७९) करता हुआ जीवन-निर्वाह करे, क्योंकि वह क्षत्रिय कर्म उस ब्राह्मणकर्म का समीपवर्ती है।"

"उभाभ्यामप्य जीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
कृषि गोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥"

—मनुस्मृति अ. १०

अर्थ—"दोनों (ब्राह्मणकर्म+क्षत्रियकर्म) से जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता हुआ ब्राह्मण किस प्रकार रहे ? ऐसा सन्देह उपस्थित हो जाय तो वह वैश्य के कर्म खेती, गोपालन और व्यापार से जीविका करे।"

(४४) स्त्रियों के लिए 'शालग्राम' की पूजा का निषेध—

"न जातुचित् स्त्रियाकार्यं शालग्रामस्य पूजनम् ।
भर्तृहीनाऽथ सुभगा स्वर्गलोकहितैषिणी ।
मोहात्स्पृष्ट्वाऽपि महिला जन्मशीलगुणान्विता ।
हित्वा पुण्यसमूहं सा सत्वरं नरकं व्रजेत् ॥२४॥
स्त्रीपाणिमुक्त पुष्पाणि शालग्रामशिलोपरि ।
पवेरधिकपातानि वदन्ति ब्राह्मणोत्तमाः ।
चन्दनं विषसंकाशं कुसुमं वज्रसन्निभम् ।
नोवेद्यं कालकूटाभं भवेद्भगवतः कृतम् ॥२६॥

—पद्मपुराणम्, ५ पातालखण्डे, अ. २०+

अर्थ—"विधवा अथवा सधवा, स्वर्गलोक हितैषिणी स्त्री का कार्य शालग्राम का पूजन नहीं है। शील व गुणवती महिला भी मोह से स्पर्श कर ले तो वह ग्रहण किया हुआ पुण्य समूह सहित शीघ्र नरक जाती है। स्त्री को अपने हाथ से शालग्राम शिला पर फूल चढ़ाना श्रेष्ठ ब्राह्मण अधिक पाप बतलाते हैं। स्त्री के अपने हाथ से शालग्राम पर चढ़ाया गया चन्दन विष तुल्य, कुसुम वज्र के समान तथा नैवेद्य लगाना कालकूट नामक विष के समान है।"

इसलिए वेद का सिद्धान्त है कि 'मूर्तिपूजा' अवैदिक है वह चाहे शालग्राम की, शिवलिङ्ग, राम, कृष्ण, विष्णु किसी भी मूर्ति हो। वेद का तो कथन है कि "न तस्य प्रतिहाऽस्तियस्य नाम महद्यशः" [यजु. ३२।३] जो सब जगत् में व्यापक है, उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है।

+ तुलना करो—सन् १८९४ ई. में आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूणे में मुद्रित व प्रकाशित "पद्मपुराण, द्वितीयोभागः", अ. २०, पृष्ठ ४६६.

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती के १०६वें निर्वाण दिवस पर श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के तत्त्वावधान में आयोजित ऋषि मेला १९८९ के

अवसर पर

महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास

आर्यसमाज फुलेरा जिला जयपुर—राजस्थान द्वारा

श्री डा. शिवपूजनसिंह कुशवाह शास्त्री

—साहित्यालंकार-एम. ए.

संस्थापक—श्री मद्दयानन्द वैदिक शोध-संस्थान की सेवा में

अभिनन्दन-पत्र

आदरणीय विद्वान् !

वैदिक धर्म, आर्य सिद्धान्तों और आर्यसमाज में आपकी अगाध श्रद्धा है। आप महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त हैं। वैदिक धर्म, वैदिक साहित्य एवं आर्यसमाज के प्रति समर्पित भाव से की गई आपकी श्लाघनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास, आर्यसमाज फुलेरा की ओर से महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार के २५०१ रुपये नकद, दयानन्द स्वर्णपदक, उत्तरीय तथा प्रशस्तिपत्र अभिनन्दन स्वरूप प्रदान करते हुए हम अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं।

प्रिय आर्य बन्धु !

विहार प्रान्त के सारण जिले के ग्राम गौरा में श्रीयुत हँसराजसिंह कुशवाह अध्यापक के घर आपने सन् १९२४ में जन्म लिया। बचपन से ही आपकी पौराणिक धार्मिक प्रवृत्ति थी। आप वैष्णव सम्प्रदाय को मानते थे, यही कारण

था कि सहपाठी आपको साधु कह कर सम्बोधित करते थे। सन् १९३५ में सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति आपके हाथ लगी, जिसे पढ़ कर स्वयं को महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्यसमाज की ओर उन्मुख किया। आप तब से आज तक लगातार लेखनी व वाणी के द्वारा आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इसके लिए आपको अनेकानेक साधुवाद।

विख्यात साहित्य सेवी !

विपक्षियों के आक्षेपों का लेखबद्ध उत्तर देने में आपको अपूर्व सफलता मिली है। आपकी लेखन शैली उद्धरण प्रधान है, जो आपकी विस्तृत स्वाध्याय-शीलता की द्योतक है। आपने अपने विस्तृत स्वाध्याय के बल पर आर्यसमाज के लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। अब तक आपके ७५८ लेख आर्यजगत्, सार्वदेशिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

वैदिक शास्त्रार्थ-महारथी !

विगत ४० वर्षों से आप आर्य साहित्य की जो निरन्तर सेवा और अभि-वृद्धि कर रहे हैं, वह सर्वथा श्लाघनीय तथा अनुकरणीय है। 'नीर क्षीर विवेक' अर्थात् माधव मुख महाचपेटिका तथा 'वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड' आपकी शास्त्रार्थ विषयक उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। स्वामी हरिहरानन्द करपात्री द्वारा रचित 'वेद का स्वरूप और प्रामाण्य' पुस्तक का उत्तर आपने 'पौराणिक भ्रमोच्छेदन' के नाम से दिया है, तथा मेरठ के राजेन्द्र गर्ग द्वारा लिखित 'दयानन्द गाली पुराण' का भी आपने मुँह तोड़ उत्तर 'गर्ग मुख महाचपेटिका' लिख कर दिया है। सनातनी पंडितों द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज पर लगाये मिथ्या आरोपों और आक्षेपों का आपने अपनी पुस्तकों में सप्रमाण उत्तर दिया है। उत्तरप्रदेश सरकार ने आपकी एक पुस्तक 'आचार्य दयानन्द सरस्वती और मसीही मत पर्यालोचन' को जब्त कर रखी है। अब तक आपकी लिखी ५० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य की ३६ पुस्तकें अप्रकाशित लिखी पड़ी हैं, जिनके

प्रकाशन की अब तक कोई व्यवस्था नहीं हुई। हम आर्यसमाजों, आर्यप्रतिनिधि सभाओं, आर्य प्रकाशकों तथा सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा नई दिल्ली और परोपकारिणी सभा अजमेर से सादर नम्र निवेदन करते हैं कि श्री कुशवाह की पुस्तकों के प्रकाशन की कोई व्यवस्था करें।

लब्धप्रतिष्ठ गवेषक !

केन्द्रीय सरकार की टैफको कानपुर से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् आप आर्यसमाज के कार्यों में अपना पूरा समय प्रदान कर रहे हैं। श्रद्धेय स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती से वानप्रस्थ की दीक्षा लेने के पश्चात् वेद मन्दिर (गीता आश्रम) ज्वालापुर में वैदिकधर्म तथा आर्यसमाज के प्रति समर्पित होकर अनुसन्धान का कार्य करते हुये भी यत्र तत्र आर्यसमाजों में प्रचारकार्य भी करते रहते हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य के अनुसन्धान में आपने अपना जो जीवन लगा रखा है—वह स्तुत्य और अनुकरणीय है।

सम्पादन कला विशारद !

लेखन कार्य के साथ साथ आपने पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्य भी श्रेष्ठता, कुशलता तथा चतुराई के साथ किया है। 'कुशवाहा क्षत्रिय', 'कुशवाहा क्षत्रिय वन्धु' तथा 'शाक्य प्रभा' के आप वर्षों सम्पादक रहे हैं। वेदवाणी कार्यालय वहालगढ़ से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध पत्र 'वेदवाणी' के संयुक्त सम्पादक रहने का भी आपको गौरव प्राप्त है। आप परोपकारिणी सभा अजमेर के मासिक मुख पत्र परोपकारी के आदरी सम्पादक भी रह चुके हैं।

प्रसिद्ध जादू सम्राट् !

आप जादू विद्या की विशिष्ट कला में दक्ष हैं। जादू विद्या का प्रदर्शन करके आप जनता को चकित कर देते हैं। आपने जादू विद्या रहस्य सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखकर 'गागर में सागर' भर कर इस गुप्त विद्या को भी जन जन तक पहुँचा दिया है। आपका यह कथन सत्य ही है कि जादू एक ललित कला है, कोई मंत्र-तंत्र नहीं वरन् हाथ की चालाकी है।

आर्यसमाज के सपूत !

महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋषि मेला अजमेर के अवसर पर हम आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुये महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास आर्यसमाज फुलेरा की ओर से श्रद्धा-सुमन अर्पित करके आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह वैदिक धर्म और आर्यसमाज के कार्यों को पूरा करने हेतु आपको दीर्घायु करे।

जीवतात् शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्

हम हैं आपके—

ऋषि उद्यान, अजमेर — महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास
दिनांक ५ नवम्बर, १९८९ — आर्यसमाज फुलेरा के अधिकारी एवं सदस्यगण

महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार
दयानन्दाब्द १६५
प्रशस्ति पत्र

श्री डॉ. शिवपूजनसिंह कुशवाह एम. ए. शास्त्री, साहित्यालंकार, वेद मंदिर, ज्वालापुर, हरिद्वार को वैदिक धर्म, वैदिक साहित्य एवं आर्यसमाज के प्रति समर्पित भाव से की गई श्लाघनीय सेवाओं के फलस्वरूप महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास, आर्यसमाज फुलेरा की ओर से २५०१ रुपये नकद, स्वर्णपदक तथा उत्तरीय, महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया जाता है।

मंत्री
महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास
आर्यसमाज फुलेरा, जिला जयपुर (राज.)

भंवरलाल शर्मा
अध्यक्ष
महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार निधि न्यास
आर्यसमाज फुलेरा, जिला जयपुर (राज.)

दिनांक ५ नवम्बर '८९